वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

वर्ष ५९ अंक २
फरवरी २०२१

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

फरवरी २०२१

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५९
अंक २

वार्षिक १६०/– **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. स्वामी विवेकानन्द-स्तोत्रम्	५३
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित)	५३
३. सम्पादकीय : स्वामी विवेकानन्द का आह्वान : सकारात्मक शिक्षादर्श से सुषुप्त ब्रह्म को जगाना होगा	५४
४. विन्ध्याचल में स्वामी ब्रह्मानन्द (स्वामी तन्निष्ठानन्द)	५६
५. (कविता) योगाचार्य विवेकानन्द (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा)	६२
६. रामराज्य का स्वरूप (१/४) (पं. रामकिंकर उपाध्याय)	६३
७. (प्रेरक लघुकथा) सुखी जीवन का मूलमन्त्र (डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर)	६५
८. अध्यात्म विज्ञान है – अन्तर्जगत का (स्वामी शशांकानन्द)	६६
९. आध्यात्मिक जिज्ञासा (६२) (स्वामी भूतेशानन्द)	६९
१०. (बच्चों का आँगन) साहसी नेता 'नरेन्द्रनाथ' (ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य)	७१
११. आर्य जाति का इतिहास (स्वामी विवेकानन्द)	७२
१२. सारगाछी की स्मृतियाँ (१००) (स्वामी सुहितानन्द)	७८
१३. (युवा प्रांगण) जीवन में परिवर्तन हेतु ग्रन्थों-शिक्षकों का सम्मान एवं विवेकानन्द का अध्ययन करें (स्वामी ओजोमयानन्द)	८०
१४. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३८) (स्वामी अखण्डानन्द)	८४
१५. प्रश्नोपनिषद् (९) (श्रीशंकराचार्य)	८७
१६. गीतातत्त्व-चिन्तन – १४ (नवम अध्याय) (स्वामी आत्मानन्द)	८८

१७. साधुओं के पावन प्रसंग (२६)
(स्वामी चेतनानन्द) ९१
१८. सत्संग से चित्तशान्ति और भगवत्प्राप्ति
(स्वामी सत्यरूपानन्द) ९३
१९. समाचार और सूचनाएँ ९५

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द के मैसूर आगमन (१८९२) के शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में १९९२ ई. में इस भव्य मूर्ति का अनावरण तत्कालीन उपराष्ट्रपति के. आर.नारायणन द्वारा किया गया था। स्वामीजी की यह मूर्ति रामकृष्ण आश्रम, मैसूर से ०.५ किलोमीटर की दूरी पर चेलूवम्बा पार्क में अवस्थित है। इस मूर्ति का संरक्षण मैसूर आश्रम द्वारा किया जाता है।

फरवरी माह के जयन्ती और त्योहार

४	स्वामी विवेकानन्द
१३	स्वामी ब्रह्मानन्द
१५	स्वामी त्रिगुणातीतानन्द
१६	सरस्वती पूजा
२७	स्वामी अद्‌भुतानन्द

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्रीमती कृष्णा गड़ी, मुनिरका, न्यू दिल्ली	२५,०००/-

*विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : **www.rkmraipur.org***

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६३९.	विपासा डे, डोम्बिवली (पूर्वी) (महाराष्ट्र)	पुस्तकालय, सीताराम चमारिया डिग्री कॉलेज, कटिहार (बिहार)
६४०.	,, ,,	पुस्तकालय, एम.जे.एम. महिला कॉलेज, कटिहार (बिहार)
६४१.	,, ,,	पुस्तकालय, महर्षि मेहनी होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेज,कटिहार
६४२.	,, ,,	पुस्तक परब, गाँधीनगर, सेक्ट.-११, गाँधीनगर, गुजरात
६४३.	,, ,,	विकास वर्तुल ट्रस्ट, वादवा, भावनगर, गुजरात
६४४.	,, ,,	शा. माध्यमिक शाला, बेन्दरची, पो. - कवर्धा (छ.ग.)

रामकृष्ण कुटीर,

विवेकानन्द कार्नर, अलमोड़ा - २६३ ६०१

(उत्तराखण्ड) दूरभाष – +918445008469

ईमेल – almora@rkmm.org

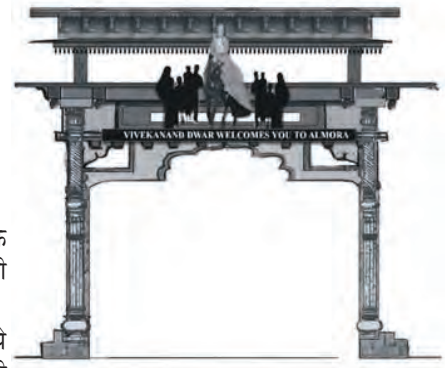

प्रिय मित्रो !

रामकृष्ण कुटीर (आश्रम), अलमोड़ा की स्थापना हमारे महान पथप्रदर्शक स्वामी विवेकानन्द के आदेश से श्रीरामकृष्ण परमहंस के अन्तरंग शिष्य स्वामी तुरीयानन्द जी तथा स्वामी शिवानन्द जी के द्वारा सन् १९१६ में की गई।

यह आश्रम मुख्य मोटर सड़क से लगभग ८०-९० फीट नीचे एक सीधे खड़े पहाड़ के ढलान पर स्थित है। सड़क से मंदिर तक केवल सीढ़ियों से ही जाया जा सकता है। अधिक आयु वाले अधिकांश वरिष्ठ श्रद्धालुओं एवं दर्शनार्थियों को इतनी सीढ़ियों से होकर मंदिर तक पहुँचने में अत्यधिक कठिनाई होती है। इसे देखते हुए मुख्य मार्ग से मंदिर तक छोटी गाड़ियों के आवागमन के योग्य सड़क-निर्माण का निर्णय लिया गया है, जिससे सभी श्रद्धालु सरलता से मंदिर तक पहुँच सकें।

वर्तमान में आश्रम में हमारे पास कुछ आलमारियों में एक छोटा बुक-स्टॉल है। आश्रम में आनेवाले अलमोड़ा के अधिकांश दर्शनार्थियों को इसकी जानकारी नहीं है, इसलिए हम वर्तमान तुरीयानन्द पुस्तकालय के ऊपर सड़क के समानान्तर एक ऐसा बुक स्टॉल बनाने पर विचार कर रहे हैं, जो श्रीरामकृष्ण, विवेकानन्द एवं वेदान्त साहित्य के शाश्वत संदेशों के प्रसार में सहायक सिद्ध होगा।

इस आश्रम को बने हुए १०० वर्ष से अधिक हो गये हैं। अब इसमें काफी मरम्मत, सुधार तथा नवीनीकरण कराना अनिवार्य है। मरम्मत और नवीनीकरण के अंग के रूप में ही आगन्तुक साधुओं के निवास हेतु अद्‌भुतानन्द कुटीर के ऊपर ४ नवीन कक्षों के निर्माण करने की भी हमारी योजना है। इन सभी परियोजनाओं को पूर्ण करने की अनुमानित व्यय की राशि निम्नानुसार है –

१. मुख्य मार्ग से मंदिर तक सड़क –	**१करोड़ ३०लाख**
२. फर्नीचर, विद्युत तथा ध्वनि-व्यवस्था आदि –	**७५ लाख**
३. साधु निवास –	**३० लाख**
४. विवेकानन्द द्वार –	**१२ लाख**
५. राजकीय इंटर कॉलेज, अलमोड़ा में स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति –	**२ लाख**
६. कार्यालय भवन, रसोई, स्टाफ रूम तथा शौचालय –	**७० लाख**
कुलयोग -	**३ करोड़ १९ लाख**

अलमोड़ा के साथ स्वामी विवेकानन्द का अत्यन्त आत्मीय सम्बन्ध रहा है । वे १८९०, १८९७ और १८९८ में कुल ३ बार अलमोड़ा आए थे। हम ठाकुर, माँ और स्वामीजी के सभी भक्तों, प्रशंसकों और मित्रों से निवेदन करते हैं कि वे इस पुण्य कार्य में उदारता से दान दें। दानराशि **'रामकृष्ण कुटीर'** के नाम से चेक भेज कर अथवा नीचे दिए गए बैंक खाते में सीधे जमा करके दी जा सकती है।

खातेदार का नाम - रामकृष्ण कुटीर, **बैंक का नाम** - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, **IFSC कोड** - SBIN0000605,
शाखा - माल रोड, अलमोड़ा - 263 601, **खाता संख्या** - 10861422452 (भारतीय दानदाताओं हेतु),
खाता संख्या - 36167860051 (विदेशी दानदाताओं हेतु),

कृपया इसके साथ ही दानदाता का नाम, स्थाई पता, फोन नम्बर, पैन कार्ड, दान का उद्देश्य, बैंक में धन जमा करने की तारीख तथा सम्बन्धित बैंक का नाम, जिसमें धन जमा किया गया है, आदि की जानकारी ई-मेल से शीघ्र सूचित कर दें। रामकृष्ण कुटीर अलमोड़ा को दी गई सभी प्रकार की दान-राशि आयकर अधिनियम 1961 की धारा 80-G के अन्तर्गत कर-मुक्त है।

श्रीश्रीठाकुर, माँ और स्वामीजी से आपके मंगल की प्रार्थनाओं सहित

श्रीरामकृष्ण की सेवा में आपका
स्वामी ध्रुवेशानन्द
(अध्यक्ष)
98795145670

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखों संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

SMS: **SOLAR to 58888**

Toll Free
1800 233 4545

www.sudarshansaur.com
E-mail: office@sudarshansaur.com

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५९ फरवरी २०२१ अंक २

स्वामी विवेकानन्द-स्तोत्रम्

दधद् दिव्यज्योतिः परमरमणीयं नयनयोः
प्रसन्नास्यः सौम्यो मुनिकनकशोभाधरवपुः।
सुधीः सत्यद्रष्टा भुवनवरणीयः श्रुतिधरो
विवेकानन्दोऽसौ मनुजतनुधारी स्मरहरः।।

– जिनके दो नेत्र परम रमणीय दिव्य ज्योति से उद्भासित थे, जिनके शरीर में मुनियों के समान स्वर्ण वर्ण की दीप्ति थी, जो सद्बुद्धिसम्पन्न सत्यद्रष्टा, विश्ववन्द्य एवं श्रुतिधर थे, वे ही विवेकानन्द मनुष्यदेहधारी साक्षात् महादेव हैं।।१।।

किशोरो ध्यानस्थो भुजगभयशून्यो ह्यविचलो
युवा दण्डी वैश्वानरसदृशदीप्तिर्भुवि चरन्।
स्वधर्म-भ्रष्टानां कलुषितधियां त्राणनिरतो
विवेकानन्दोऽसौ गहनतिमिरे भास्वररविः।।

– जो किशोरावस्था में ध्यानस्थ होने पर सम्मुख फण उठाये विषधर सर्प से भयशून्य एवं अविचल थे, यौवन में दण्ड धारण कर संन्यासी वेश में अग्निदेव के समान दीप्तिमान होकर जो संसार में विचरण करते, स्वधर्मभ्रष्ट कलुषित बुद्धिवाले का जो सदा परित्राण करते हैं, अज्ञानान्धकार में उज्ज्वल सूर्य के सदृश वे ही विवेकानन्द हमारे अज्ञान का नाश करें।

पुरखों की थाती

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमिति वृथाभिमानः
स्वकर्म-सूत्र-ग्रथितो हि लोकः।।७१४।।

– सुख या दुख को देनेवाला अन्य कोई नहीं है। कोई दूसरा देता है, ऐसा सोचना भी दुर्बुद्धि है। मैं सुख या दुख प्राप्त करता हूँ, ऐसा मानना भी मिथ्या अभिमान है, क्योंकि पूरा संसार अपने-अपने कर्मफलों की डोरी से बँधा हुआ (कठपुतली के समान) चलता है। (अध्यात्म-रामायण)

देवे तीर्थे द्विजे मन्त्रे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।।७१५।।

– देवता, तीर्थ, पुरोहित, मंत्र, भविष्यवक्ता, औषधि तथा गुरु के विषय में, जिसकी जैसी श्रद्धा-भावना रहती है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है।

एकाकी चिन्तयेद्-ब्रह्म मनो-वाक्काय-कर्मभिः।
मृत्युं च नाभिनन्देत जीवितं वा कथञ्चन।।७१६।।

– (साधक को चाहिये कि वह) एकाकी रहते हुए, अपने सम्पूर्ण मन-वाणी-शरीर तथा कर्मों के द्वारा ब्रह्म का चिन्तन करता रहे; वह न तो कभी मृत्यु की कामना करे और न ही जीवन की अभिलाषा रखे।

सम्पादकीय

स्वामी विवेकानन्द का आह्वान : सकारात्मक शिक्षादर्श से सुषुप्त ब्रह्म को जगाना होगा

सोया हुआ ब्रह्म जाग उठा

स्वामी विवेकानन्द भारतीय नवजागरण के अग्रदूत और वैश्विक मानस-चेतना में अभिनव विश्व के शक्ति-संचारक थे। उन्होंने अपने अनुभव से बोध किया था कि यदि किसी व्यक्ति की अन्तश्चेतना को जाग्रत करना है, तो उसे सर्वप्रथम सकारात्मक विचारों से ओतप्रोत कर उसकी स्वाभाविक अन्तरंग शक्ति को जगाना होगा, उसमें सुषुप्तावस्था में विद्यमान ब्रह्मशक्ति को जाग्रत करना होगा। तभी वह अपनी दुर्बलता छोड़कर अपनी अपार शक्ति का बोध कर सकेगा और एक सम्मानित आत्मविश्वासी जीवन-यापन कर सकेगा। इसलिये उन्होंने भारतीयों में विनष्ट आत्मविश्वास और आत्मशक्ति को जाग्रत करने के लिए सकारात्मक शिक्षा का परामर्श दिया। वे अपने शिष्य शरत् चन्द्र चक्रवर्ती से कहते हैं – ''उद्बोधन' (बंग्ला मासिक पत्रिका) के द्वारा जनसाधारण के सामने सकारात्मक आदर्श रखना होगा। 'नहीं-नहीं' की भावना मनुष्य को दुर्बल बना देती है।''[१]

सकारात्मक विचारों से व्यक्ति में कैसा अद्भुत परिवर्तन होता है, उसका एक दृष्टान्त देते हुए स्वामीजी २४ अप्रैल, १८९७ को दार्जिलिंग से श्रीमती सरला घोषाल को पत्र में लिखते हैं – ''न्यूयार्क में मैं आइरिश नवागन्तुकों को देखा करता था – पददलित, कान्तिहीन, नि:सम्बल, अति निर्धन और अशिक्षित, साथ में एक लाठी और उसके सिर पर लटकती हुई फटे कपड़ों की एक छोटी-सी पोटली। उसकी चाल में भय और आँखों में आशंका होती थी। छह महीने में ही यह दृश्य बिलकुल बदल जाता था। अब वह तनकर चलता था, उसका वेश बदल गया था, उसकी चाल और चितवन में पहले का भय नहीं दिखायी पड़ता। ऐसा क्यों हुआ? हमारा वेदान्त कहता है कि वह आइरिश अपने देश में चारों ओर घृणा से घिरा हुआ रहता था, सारी प्रकृति एक स्वर में उससे कह रही थी – 'बच्चू, तेरे लिए और कोई आशा नहीं है, तू गुलाम ही पैदा हुआ और सदा गुलाम ही बना रहेगा।' आजन्म सुनते-सुनते बच्चू को वैसा ही विश्वास हो गया। बच्चू ने अपने को सम्मोहित कर डाला कि वह अति नीच है। इससे उसका ब्रह्मभाव संकुचित हो गया। परन्तु जब उसने अमेरिका में पैर रखा, तो चारों ओर से ध्वनि उठी – 'बच्चू, तू भी वही आदमी है, जो हम लोग हैं। मनुष्यों ने ही सब काम किए हैं; तेरे और मेरे जैसे मनुष्य ही सब कुछ कर सकते हैं। धीरज धर।' बच्चू ने सिर उठाया और देखा कि बात तो ठीक ही है – बस, उसके अन्दर सोया हुआ ब्रह्म जाग उठा; मानो प्रकृति ने स्वयं ही कहा हो – 'उठो, जागो और जब तक लक्ष्य तक न पहुँच जाओ, रुको मत।''[२]

इसलिये स्वामीजी बार-बार सामाजिक, राजनैतिक आदि की भित्ति पर नहीं, आध्यात्मिक भित्ति पर मनुष्य के चरित्र-निर्माण की बात करते हैं। मानव में जो सुषुप्त असीमित शक्ति है, उसके जागरण का सन्देश देते हैं। वे उसी पत्र में सरला घोषाल को लिखते हैं – ''द्वैत, विशिष्टाद्वैत, अद्वैत, शिवसिद्धान्त (शैव), वैष्णव, शाक्त, यहाँ तक कि बौद्ध और जैन, जितने सम्प्रदाय भारत में स्थापित हुए हैं, सभी इस विषय पर सहमत हैं कि इस जीवात्मा में अनन्त शक्ति अव्यक्त भाव से निहित है। चींटी से लेकर ऊँचे-से-ऊँचे सिद्ध पुरुष तक सभी में वह आत्मा विराजमान है, अन्तर केवल उसके प्रत्यक्षीकरण के भेद में है। वरणभेदस्तु तत: क्षेत्रिकवत् (पातंजल योगसूत्र, कैवल्यपाद) – किसान जैसे खेतों की मेड़ तोड़ देता है और एक खेत का पानी दूसरे खेत में चला जाता है, वैसे ही आत्मा भी आवरण टूटते ही प्रकट हो जाती है। उपयुक्त अवसर और उपयुक्त देश-काल मिलते ही उस शक्ति का विकास हो जाता है। परन्तु चाहे विकास हो, चाहे न हो, वह शक्ति प्रत्येक जीव – ब्रह्मा

से लेकर घास तक में विद्यमान है। इस शक्ति को सर्वत्र जा-जाकर जगाना होगा।''[३]

ब्रह्म-जागरण से क्या होगा? – कई लोग ब्रह्म, भगवान और ईश्वर का नाम सुनते ही डर जाते हैं या बड़ी उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, कुछ लोग तो इसे वृद्धावस्था का काम समझते हैं आदि। लेकिन स्वामी विवेकानन्द के अनुसार सुषुप्त ब्रह्म को जाग्रत करने से व्यक्ति में अनन्त शक्ति और असीम ऊर्जा प्रवाहित होने लगती है, उसमें आत्मविश्वास-सिन्धु की उत्ताल तरंगें हिलोरें लेने लगती हैं। उसके लिये जगत का कोई भी कार्य असम्भव नहीं रह जाता। इसके अतिरिक्त उसके जीवन में त्रुटियाँ नहीं होतीं, वह हिंसक दुराचारी नहीं होता। क्योंकि ऐसा व्यक्ति सबमें उसी शक्ति को देखकर सबसे प्रेम करता है, वह किसी से घृणा नहीं करता। स्वामीजी कहते हैं – ''जो व्यक्ति अपनी आत्मा को सब जीवों में स्थित देखता है और आत्मा में सब जीवों को देखता है, वह इस तरह ईश्वर को सर्वत्र समभाव से विद्यमान देखता हुआ आत्मा द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करता।''[४]

यदि मानव का यह सुषुप्त ब्रह्म जाग्रत हो जाए, तो संसार में राग-द्वेष, घृणा, हिंसा, चोरी, कदाचार और हत्याएँ सदा के लिये बन्द हो जाएँगी। युवक-युवतियाँ, जो अवसादग्रस्त होकर आत्महत्या तक कर लेते हैं, यह बन्द हो जायेगा और उनके जीवन में नया उत्साह का सूर्योदय हो जायेगा। यदि समाज उपरोक्त अवगुणों से मुक्त होकर प्रेम, सदाचार, आत्मविश्वास और आत्मसम्मान का जीवन यापन करता है, जिसके लिये सरकार कितने नियम बनाकर भी देश को दे नहीं पा रही है, तो क्या संसार के लिये यह बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं होगी? इसलिये स्वामीजी की वाणी को शिरोधार्य करके प्रत्येक मानव में अन्तर्निहित देवत्व को जाग्रत करने का प्रयास करना होगा।

दुख का कारण : भ्रम और उससे मुक्ति का मार्ग

हमारे दुखों का कारण हमारी अज्ञानता, हमारा भ्रम, हमारी मूढ़ता है। इसके कारण हम स्वयं दुखित रहते हैं और दूसरों से विवाद कर दूसरों को भी दुख देते हैं। स्वामीजी कहते हैं – ''हमलोग केवल भ्रान्तिवश ही दुख भोगते हैं। इस भ्रान्ति को दूर कर दो और तत्काल सारे दुख चले जाएँगे।''[५] हमारे अन्दर की शक्ति के जागने से, सुषुप्त ब्रह्म के जागने से हमारा भ्रम दूर हो जायेगा, हम सच्चे आनन्द में विहार करने लगेंगे।

शिक्षा का उद्देश्य – स्वामीजी शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध में कहते हैं – ''उच्च शिक्षा का उद्देश्य है – जीवन की समस्याओं को सुलझाना।''[६] जीवन में विभिन्न समस्याएँ हैं और शिक्षा यदि उसे सुलझाने में असफल रहती है, तो उसकी प्रयोजनीयता संदिग्ध हो जाती है। लेकिन स्वामीजी ने भौतिक और आध्यात्मिक; दोनों समस्याओं का समाधान अपनी शिक्षा प्रणाली में दिया है।

भारत-समृद्धि सूत्र – भारतवर्ष की सबसे बड़ी समस्या बेरोजगारी है, जिसका समाधान स्वामीजी ने तत्कालीन परिस्थितियों में दिया था। वे कहते हैं – ''आज हमें आवश्यकता है – विदेशी नियन्त्रण हटाकर हमारे विविध शास्त्रों, विद्याओं का अध्ययन हो और साथ-साथ अँग्रेजी भाषा और पाश्चात्य विज्ञान भी सिखाया जाये। हमें उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये तकनीकी शिक्षा भी प्राप्त करनी होगी, जिससे देश के युवक नौकरी ढूँढ़ने के बजाय अपनी जीविका के लिये समुचित धनोपार्जन कर सकें और दुर्दिन के लिये कुछ बचाकर रख भी सकें।''[७]

नारियों की शिक्षा कैसी हो, उसका लाभ और उनकी आत्मरक्षा की अनुशंसा

समाज में पुरुष और नारी; दोनों का सामाजिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। किन्तु नारियाँ उपेक्षित थीं, तब स्वामीजी ने नारियों की शिक्षा एवं सर्वांगीण विकास हेतु अपने शिष्य शरत् चन्द्र चक्रवर्ती से वार्तालाप में कहा था – ''धर्म, शिल्प, विज्ञान, गृहकार्य, रसोई, सिलाई, स्वास्थ्य आदि सब विषयों की मोटी-मोटी बातें सिखलाना उचित है। ...सब विषयों में उनकी आँखें खोल देनी होगी। छात्राओं के सामने सर्वदा आदर्श नारी-चरित्र रखकर त्यागरूप व्रत में उनका अनुराग जगाना होगा। कुमारियों को सीता, सावित्री, दमयन्ती, लीलावती, खना, मीराबाई आदि के जीवन-चरित को समझाकर उनको अपना जीवन वैसा ही बनाने का उपदेश देना होगा।''[८]

आज नारियाँ असुरक्षित अनुभव करती हैं, देश के कई भागों से नारियों पर अत्याचार की सूचनाएँ प्राप्त हो रही हैं। स्वामीजी नारियों की आत्मरक्षा के लिये उपाय बताते हैं –

शेष भाग पृष्ठ ६८ पर

स्वामी ब्रह्मानन्द जयन्ती विशेष

विन्ध्याचल में स्वामी ब्रह्मानन्द

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर

विन्ध्याचल की विन्ध्यवासिनी देवी

विन्ध्याचल सिद्ध देवीपीठ अति प्राचीन काल से ही महर्षि-योगी-तपस्वियों की श्रद्धा, आस्था और मुक्तिप्रद मंगलमय क्षेत्र रहा है। इस पावन भूमि पर अनेक सिद्ध तपस्वियों ने तपस्या की है, यहाँ पर बने कई मन्दिर इसकी पुष्टि करते हैं। यह उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले का एक प्रसिद्ध धार्मिक नगर है। यह नगर गंगा-तट पर स्थित है। काशी से प्रयाग जाने का एक मार्ग विन्ध्याचल के पास से जाता है। काशी से विन्ध्याचल करीब ५७ किलोमीटर और प्रयाग से करीब ८४ किलोमीटर की दूरी पर है। यह स्थान

सबसे पवित्र शक्तिपीठ माना जाता है। यहाँ माँ विन्ध्यवासिनी देवी का मन्दिर है। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार, माँ विन्ध्यवासिनी ने महिषासुर का वध करने के लिए अवतार लिया था। यहीं विन्ध्यवासिनी देवी का सुन्दर प्राचीन मन्दिर है, जो शहर के बीच में स्थित है। इस मन्दिर में सिंह पर विराजमान देवी की मूर्ति है। मूर्ति को काले पत्थर से तराशा गया है।

त्रिकोण यंत्र पर स्थित विन्ध्यवासिनी देवी लोकहिताय, महालक्ष्मी, महाकाली तथा महासरस्वती का रूप धारण करती हैं। विन्ध्यवासिनी, अष्टभुजा और कालीखोह, इन तीनों मन्दिरों के दर्शन करने के लिए भक्त देश के सुदूर क्षेत्रों से आते हैं। यहाँ तीन किलोमीटर के क्षेत्र में तीन प्रमुख देवियाँ विराजमान हैं। तीनों देवियों के दर्शन किए बिना विन्ध्याचल की यात्रा अधूरी मानी जाती है। तीनों के केन्द्र में हैं माँ विन्ध्यवासिनी। यहाँ निकट ही कालीखोह पहाड़ी पर महाकाली (यह प्राचीन मन्दिर देवी विन्ध्यवासिनी मन्दिर से दो किलोमीटर दूर एक गुफा में स्थित है) तथा अष्टभुजा पहाड़ी पर अष्टभुजा देवी (महासरस्वती) विराजमान हैं। देवी अष्टभुजा को समर्पित यह मन्दिर देवी विन्ध्यवासिनी मन्दिर से तीन किलोमीटर दूर पहाड़ी की एक गुफा में स्थित है। उसी पहाड़ी पर तीन पवित्र जल निकाय हैं – सीता कुण्ड, मोतिया तालाब और गेरुआ तालाब।

भगवती विन्ध्यवासिनी आद्या महाशक्ति हैं। विन्ध्याचल सदा से उनका निवास-स्थान रहा है। जगदम्बा की नित्य उपस्थिति ने विन्ध्यगिरि को जाग्रत शक्तिपीठ बना दिया है। महाभारत के विराट पर्व में धर्मराज युधिष्ठिर देवी की स्तुति करते हुए कहते हैं – हे माता ! पर्वतों में श्रेष्ठ विन्ध्याचल पर आप सदैव विराजमान रहती हैं। पद्मपुराण में विन्ध्याचल-निवासिनी इन महाशक्ति को विन्ध्यवासिनी के नाम से सम्बोधित किया गया है। देवीभागवत के दशम स्कन्ध में कथा आती है, सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी ने जब सबसे पहले अपने मन से स्वायम्भुव मनु और शतरूपा को उत्पन्न किया, तब विवाहोपरान्त स्वायम्भुव मनु ने अपने हाथों से देवी की मूर्ति बनाकर सौ वर्षों तक कठोर तप किया। उनकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर भगवती ने उन्हें निष्कण्टक राज्य, वंश-वृद्धि एवं परम पद पाने का आशीर्वाद दिया। वर देने के बाद महादेवी विन्ध्याचल पर्वत पर चली गईं। इससे यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि के प्रारम्भ से ही माँ विन्ध्यवासिनी की पूजा होती रही है। सृष्टि का विस्तार उनके ही शुभाशीष से हुआ। त्रेतायुग में भगवान श्रीरामचन्द्र सीताजी के साथ विन्ध्याचल आए थे। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने यहाँ पर

रामेश्वर महादेव की स्थापना की थी, जिससे इस शक्तिपीठ का माहात्म्य और भी बढ गया है। द्वापरयुग में मथुरा के राजा कंस ने जब अपने बहन-बहनोई देवकी-वसुदेव को कारागार में डाल दिया और वह उनकी सन्तानों का वध करने लगा, तब वसुदेवजी के कुल-पुरोहित गर्ग ऋषि ने कंस के वध एवं श्रीकृष्णावतार हेतु विन्ध्याचल में लक्षचण्डी का अनुष्ठान करके देवी को प्रसन्न किया, जिसके फलस्वरूप वे नन्दरायजी के यहाँ अवतरित हुईं। मार्कण्डेयपुराण में वर्णित दुर्गासप्तशती (देवी-माहात्म्य) के ग्यारहवें अध्याय में देवताओं के अनुरोध पर भगवती उन्हें आश्वस्त करते हुए कहती हैं – देवताओं वैवस्वत मन्वन्तर के अठाइसवें युग में शुम्भ और निशुम्भ नामक दो महादैत्य उत्पन्न होंगे। तब मैं नन्दगोप के घर में उनकी पत्नी यशोदा के गर्भ से अवतीर्ण हो विन्ध्याचल में जाकर रहूँगी और उक्त दोनों असुरों का नाश करूँगी। लक्ष्मीतन्त्र नामक ग्रन्थ में भी देवी का यह उपर्युक्त वचन शब्दश: मिलता है। व्रज में नन्द गोप के यहाँ उत्पन्न महालक्ष्मी की अंशभूता कन्या को नन्दा नाम दिया गया। मूर्तिरहस्य में ऋषि कहते हैं – नन्द के यहाँ उत्पन्न होनेवाली नन्दा नामक देवी की यदि भक्तिपूर्वक स्तुति-पूजा की जाए, तो वे तीनों लोकों को उपासक के अधीन कर देती हैं। भागवतमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्माख्यान में वर्णन है कि देवकी के आठवें गर्भ से आविर्भूत श्रीकृष्ण को वसुदेवजी ने कंस के भय से रातोंरात यमुनाजी के पार गोकुल में नन्दजी के घर पहुँचा दिया तथा वहाँ यशोदा के गर्भ से पुत्री के रूप में जन्मीं भगवान की शक्ति योगमाया को चुपचाप वे मथुरा ले आए। आठवीं सन्तान के जन्म का समाचार सुन कर कंस कारागार में पहुँचा। उसने उस नवजात कन्या को पत्थर पर जैसे ही पटक कर मारना चाहा, वैसे ही वह कन्या कंस के हाथों से छूटकर आकाश में पहुँच गई और उसने अपना दिव्य स्वरूप प्रदर्शित किया। कंस के वध की भविष्यवाणी करके भगवती विन्ध्याचल वापस लौट गईं।

बारहवीं सदी में भारत पर हो रहे मुगलों के आक्रमण से रक्षा करने के लिए काशी-नरेश हेमकर्ण ने माँ विन्ध्यवासिनी की घोर तपस्या की। जब माँ प्रसन्न न हुईं, तो हेमकर्ण ने अपनी गर्दन माँ को अर्पित करनी चाही, जिससे रक्त की पाँच बूँदें माँ के चरणों में गिरी। माँ प्रकट हुईं और बुन्देला कहकर माँ ने काशी-नरेश हेमकर्ण को सम्बोधित किया। रक्त की पाँच बूँदें माँ के चरणों में गिरने के कारण 'वीर पंचम बुन्देला' से सम्बोधित किया और विन्ध्यवासिनी ने एक तलवार हेमकर्ण बुन्देला को वरदान में दी। इस तलवार से बुन्देलों ने मुगलों से कई युद्ध लड़े और मुगलों का विनाश किया। आज भी यह तलवार चन्देरी बानपुर नरेश मर्दन सिंह जूदेव बुन्देला के परिवार ने सुरक्षित रखी है। जिसकी मूठ पर २१ देवी देवताओं समेत माँ विन्ध्यवासिनी के चित्र बने हैं। तब से ही विन्ध्यवासिनी बुन्देलों की कुलदेवी हैं।

विन्ध्याचल के कुछ और स्थान : यह माना जाता है कि माता सीता ने सीताकुण्ड तालाब में स्नान किया था। पास में ही भगवान राम, हनुमान, देवी दुर्गा और माता सीता का मन्दिर है। भगवान रामेश्वर महादेव मन्दिर देवी विन्ध्यवासिनी मन्दिर से १ किमी दूर रामगया घाट पर स्थित है। पौराणिक कथाओं के अनुसार भगवान राम ने अपने पूर्वजों की याद में यहाँ शिव लिंग की स्थापना की थी। मन्दिर का सुन्दर श्वेत भवन आश्रम जैसा दीखता है। एक विशाल शिवलिंग मध्य में स्थित है। स्थानीय किंवदन्तियों के अनुसार जब वनवास के बाद भगवान श्रीराम का राज्याभिषेक होने जा रहा था, तो वशिष्ठ मुनि ने उनसे पहले देवों की प्रार्थना करने और अपने पिता का अन्तिम संस्कार करने के लिए कहा था।

स्वामी ब्रह्मानन्द : एक दिव्य जीवन

स्वामी ब्रह्मानन्द (जन्म - २१ जनवरी, १८६३, महासमाधि – १० अप्रैल, १९२२) रामकृष्ण संघ के प्रथम संघाध्यक्ष थे। उनका पूर्वाश्रम का नाम 'राखाल चन्द्र घोष' था। श्रीरामकृष्ण भक्त-मण्डली में वे 'राजा महाराज' या 'राखाल महाराज' या केवल 'महाराज' नाम से प्रसिद्ध हैं। वे श्रीरामकृष्ण देव के मानसपुत्र थे। श्रीरामकृष्ण देव कहते थे, 'राखाल मेरा पुत्र है – मानसपुत्र।'

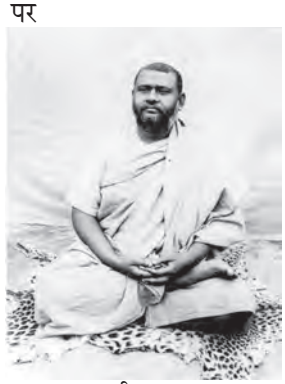
स्वामी ब्रह्मानन्द

महाराज अमित ब्रह्मतेज-सम्पन्न थे। उनकी बहुमुखी शक्ति स्रोतस्वती की भाँति शत-शत दिशाओं में प्रवाहित होती थी। किन्तु इतना तेज, इतनी शक्ति किस तरह मृण्मय आधार में इतनी शान्त रहती थी ! कहते हैं कि ब्रह्मज्ञ पुरुष का शरीर मृण्मय नहीं, चिन्मय होता है। किन्तु इन चिन्मय पुरुष के संस्पर्श में आने से यह बात सहज ही समझ में नहीं आती

थी। जो भी इन पुरुषोत्तम के चरणों के निकट उपस्थित हुआ है, चाहे वह निर्मलचित्त साधु हो, भक्त हो या ब्रह्मचारी, चाहे कोई जीवन के पापों से तप्त, दुखी, पतित और कलंकित हो, उसने देखा है और अपने हृदय में इस सत्य की अनुभूति की है कि जिसके साथ बात करने में भी मन संकुचित होता है, ऐसे उपेक्षित व्यक्ति को भी महाराज अपनी स्नेहधारा में निमग्न कर ले रहे हैं !

स्वामी विवेकानन्द ने उनके बारे में कहा था – ''आध्यात्मिकता में राखाल हम सब लोगों से बड़े हैं।'' स्वामी ब्रह्मानन्द का जन्मस्थान बसिरहाट के निकट सिकरा ग्राम में था। उनके पिता आनन्दमोहन घोष एक सम्पन्न व्यक्ति थे। राखाल उनके ज्येष्ठ पुत्र थे। प्रथम पत्नी का देहान्त होने के बाद आनन्दमोहन ने दूसरा विवाह किया था।

श्रीरामकृष्ण कहते थे, ''राखाल नित्यसिद्ध है, जन्म-जन्म से ईश्वर का भक्त है। कई लोगों को तो कठोर साधना करने पर तब कहीं थोड़ी भक्ति होती है, पर इसका तो जन्म से ही ईश्वर पर प्रेम है, यह स्वयम्भू शिव, स्थापित शिव के समान नहीं है !'' आनन्दमोहन ने इस स्वयम्भू शिव को संसारी बनाने के लिए किशोरावस्था में ही उसका विवाह कर दिया। कोन्नगर के विख्यात मित्र-परिवार में राखालचन्द्र का विवाह हुआ। पिता ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि जिस बन्धन-सूत्र से मनुष्य का माया-बन्धन दृढ़तर होता है, उसी सूत्र को पकड़कर पुत्र अपने जीवन का महान् आदर्श प्राप्त कर लेगा और संसार-बन्धन को छिन्न कर देगा। जिस परिवार में राखालचन्द्र का विवाह हुआ था, वह भक्तों का संसार था। उनकी सास पहले से ही श्रीरामकृष्णपदाश्रिता थीं; अपने पुत्र और कन्या के साथ वे प्राय: ही दक्षिणेश्वर में देव-दर्शन करने आया करती थीं। राखालचन्द्र के ज्येष्ठ साले मनोमोहन अपने बहनोई की भगवद्-भक्ति को देख बहुत ही आनन्दित हुए और एक दिन उन्हें श्रीरामकृष्ण के पास ले आये। सन् १८८१ ई. में श्रीरामकृष्ण के साथ राखालचन्द्र का प्रथम साक्षात्कार हुआ।

श्रीरामकृष्ण कहते थे, ''मैं जगन्माता से कहता – 'माँ! इच्छा होती है कि एक शुद्धसत्त्व, त्यागी भक्तबालक मेरे पास सर्वदा रहे।' एक दिन देखा, माँ ने एक बालक लाकर मेरी गोद में बिठा दिया और कहा – 'यह रहा तुम्हारा पुत्र।' मैं तो काँप उठा। माँ ने मेरा मनोभाव भाँपकर हँसते हुए कहा –'साधारण सांसारिक रूप से पुत्र नहीं, यह त्यागी मानसपुत्र है।' राखाल के आते ही मैं पहचान गया कि यह वही है।''

राखालचन्द्र को देखकर श्रीरामकृष्ण 'गोविन्द' 'गोविन्द' कहते-कहते महाभावसमाधि में लीन हो जाते थे। कभी अपार स्नेहमयी जननी का प्रेम प्रकट करते हुए उन्हें अपने हाथ से खिला देते। राखाल उस समय यौवन में पदार्पण कर चुके थे, तो भी स्वभाव में वे शिशु के समान थे। उनके साथ श्रीरामकृष्ण शिशुवत् क्रीड़ा करते। इस तरह दिन बीतने लगे। दिन-प्रतिदिन राखालराज में अद्भुत परिवर्तन दिखायी देने लगा। भीतर में भक्ति की लहरें उठ रही थीं, अनुराग का अविराम स्रोत बह रहा था। वे सर्वदा मानो नशे में डूबे रहते थे! जप करते-करते वे बड़बड़ाते रहते। गुरुसेवा की ओर लक्ष्य न रह गया। श्रीरामकृष्ण कहते, ''राखाल का ऐसा स्वभाव हो रहा है कि अब मुझे ही उसे पानी देना पड़ता है!'' श्रीरामकृष्ण जान गये थे कि राखाल अब संसार में आसक्त नहीं होगा। फिर भी वे कहते, ''उसका भोग अभी पूरा नहीं हुआ है, थोड़ा बाकी है।'' बीच-बीच में वे जोर करके उससे घर जाने के लिए कहा करते। राखाल कहते थे, ''संसार मुझे फीका लगता है। कभी-कभी तुम भी मुझे अच्छे नहीं लगते।'' इस तरह तीन वर्ष बीत गये। ससुराल से निमन्त्रण आता और दामाद उसे अस्वीकार कर देते। आत्मीय-स्वजन एवं पड़ोसी लोग एक दिन उनकी सास से दुखित हृदय से कहने लगे, ''दामाद क्या अन्त में संन्यासी हो जायेगा?'' भक्तिमती सास ने बड़े उत्साह से उत्तर दिया ''मेरा क्या ऐसा सौभाग्य होगा?''

१८८४ ई. में राखाल अस्वस्थ हो गये। वे वायुपरिवर्तन के लिए वृन्दावन गये। वहाँ उनका स्वास्थ्य सुधरने लगा। वे विभोर हो वृन्दावन के दृश्य देखने लगे। व्रज के माधुर्यमय सौन्दर्य से मानो व्रज का राखाल आज पूर्वस्मृति की उद्दीपना से मोहित हो गया हो। किन्तु पुन: वे बीमार हुए, वृन्दावन का बुखार था। श्रीरामकृष्ण बड़े चिन्तित हुए। कहने लगे, ''राखाल सचमुच ही व्रज का राखाल है। जो जिस स्थान से आ शरीर धारण करता है, वहाँ जाने से प्राय: उसका देहत्याग हो जाता है !'' अश्रुपूर्ण लोचनों से श्रीरामकृष्ण ने श्रीचण्डी माँ से प्रार्थना की, ''माँ ! अब क्या होगा? उसे अच्छा कर दो। वह तो घर-द्वार छोड़कर मुझ पर ही पूरा निर्भर है।'' अन्यान्य भक्तों के पास राखाल की अस्वस्थता का उल्लेख कर उन्होंने कहा, ''मयूर-मयूरी अब किस तरह नाच दिखा रहे हैं, देखो !'' कुछ माह बाद राखालराज

वृन्दावन से वापस आ गये।

सन् १८८६ ई. में जीवन के आराध्यदेवता को खोकर राखालराज का हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठा। विर्दीण हृदय ले वे फिर वृन्दावन चले गये। वहाँ कुछ माह बिताकर जब वे वापस आये, तब तक वराहनगर में श्रीरामकृष्ण मठ प्रतिष्ठित हो चुका था। किन्तु मठ में आते-जाते उनका मन निर्जन नर्मदा-तट में अकेला तपस्या करने के लिए व्याकुल हो उठा। राखालराज फिर से बाहर चले गये। इसी समय से कठोर तपस्या प्रारम्भ हुई। समय-स्रोत नि:शब्द बहा जा रहा है; एकनिष्ठ तपस्वी ध्यान में मग्न हैं। दिन आ रहा है, रात बीती जा रही है; ऋतु के परिवर्तन से पृथ्वी कभी कुसुमित यौवन में हँस रही है, कभी वह अश्रुधारा से प्लावित हुई जा रही है और कभी तुषारधवल वैधव्यपरिधान से शोभित हो रही है। किन्तु हमारे तरुण संन्यासी की उधर दृष्टि ही नहीं है। निरन्तर जप-ध्यान-तपस्या में जीवन बिता रहे हैं। कभी मधुकरी करते हैं, तो कभी आकाशवृत्ति का अवलम्बन करते हैं। कुछ मिला, तो खा लिया, नहीं तो आत्मविभोर। कभी वृन्दावन, कभी हरिद्वार, कभी ज्वालामुखी। इस तरह अद्भुत तपस्या में वर्ष के बाद वर्ष बीतने लगे। इसी समय आबू पहाड़ में अचानक उनके साथ स्वामी विवेकानन्द जी की भेंट हुई। हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) उस समय उनके साथ रहते थे। उनके साथ भेंट होने के कुछ समय बाद ही १८९३ ई. में स्वामीजी श्रीरामकृष्ण के धर्मसमन्वय का सन्देश ले शिकागो धर्म-महासभा में गये और इधर राखालराज तपस्या में मग्न रहे।

इसके बाद सन् १८९७ ई. में अमेरिका से वापस आने पर स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। महाराज उसका संचालन करने लगे। बाद में सन् १८९९ ई. में स्वामीजी द्वारा बेलुड़ मठ प्रतिष्ठित हुआ। महाराज कार्यकारिणी सभा के अध्यक्ष हुए। श्रीरामकृष्ण कहते थे, ''राखाल एक राज्य चला सकता है।'' स्वामीजी ने मठ का सम्पूर्ण भार महाराज पर सौंपकर कहा, ''राखाल ! आज से यह सब तेरा है, मैं कुछ भी नहीं हूँ।'' महाराज पर स्वामीजी का अटूट विश्वास था। महाराज भी स्वामीजी को बहुत अधिक प्रेम करते थे। स्वामीजी कहते थे, ''भले ही मेरे सभी गुरुभाई मुझे छोड़ दें, पर राखाल और हरि भाई मुझे कभी नहीं छोड़ेंगे।'' अन्यान्य गुरुभाई भी महाराज को किस श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और प्रेम करते थे, यह तो वे ही समझ सकते हैं, जिन्होंने वह सब अपनी आँखों से देखा है।

नरेन्द्र और राखाल का जन्म लोकशिक्षा हेतु

श्रीरामकृष्ण का संकेत था – 'नरेन्द्र और राखाल का जन्म लोकशिक्षा के लिए हुआ है।' श्रीगुरु के निर्देश से 'लोकहिताय' राखालचन्द्र का हृदय छलक उठा। वे कभी हरिद्वार, कभी वाराणसी, कभी वृन्दावन, कभी मद्रास, इलाहाबाद, ढाका इत्यादि श्रीरामकृष्ण संघ के प्रमुख केन्द्रों में परिभ्रमण कर लोक-कल्याण करने लगे। जब जहाँ जाते, लोगों की भीड़ लग जाती। आनन्दघनमूर्ति ब्रह्मानन्द के आगमन से तम और जड़भाव दूर हो जाते और वहाँ आनन्द और चैतन्य भरपूर हो जाते। वे जहाँ रहते, लोगों को आनन्द-स्रोत में डुबाकर उनके प्राणों को विभोर कर देते। जिन लोगों ने महाराज को बेलूड़, हरिद्वार, मद्रास इत्यादि स्थानों में दुर्गापूजा का अनुष्ठान करते या रामनाम और काली-कीर्तन में भाग लेते हुए देखा है, उन्होंने चिरकाल के लिए उस पुण्यमय आनन्द-स्मृति को हृदय के गम्भीरतम प्रदेश में सँजोकर रखा है। साधु-भक्त, पापी-तापी सभी लोग इस आनन्दमय पुरुष का संग प्राप्त कर नये भाव में, नये उत्साह से संजीवित हो उठते थे। जो लोग एक बार आते, वे राखालराज के पवित्र प्रेम और नि:स्वार्थ प्यार में अपने को भूल जाते थे। जो विश्वप्रेम राखालराज ने श्रीरामकृष्ण से उत्तराधिकार में पाया था, जो प्रेम व्रज का मूलधन है, व्रज के राखाल ने आचाण्डाल सभी को उस प्रेम का भागी बनाया है ![१]

स्वामी ब्रह्मानन्द की विन्ध्याचल यात्रा : सन् १९०३ के मध्य भाग में महाराज ने उत्तर भारत के रामकृष्ण संघ के प्रमुख सेवा-केन्द्रों के परिदर्शन के लिए कलकत्ता से यात्रा की। साथ गए स्वामी सुबोधानन्द तथा ब्रह्मचारी ज्ञान। महाराज ने काशीधाम में एक माह तक वास किया। काशीधाम से कनखल जाकर महाराज वहाँ एक माह रहे। इसके बाद वृन्दावन जाकर तपस्यारत स्वामी तुरीयानन्द के साथ दो माह साधन-भजन किया। नवम्बर के प्रथम सप्ताह में वृन्दावन से प्रस्थान कर प्रयाग में स्वामी विज्ञानानन्द के पास एक दिन रहे। वहाँ से विन्ध्याचल जाकर प्राय: तीन सप्ताह वहाँ वास किया। विन्ध्याचल से दिसम्बर में बेलुड़ मठ लौटे।[२]

महाराज कलकत्ता लौटते समय प्रयाग में रेलवे स्टेशन मार्ग पर स्थित ब्रह्मवादिन क्लब में स्वामी विज्ञानानन्द जी के पास एक दिन रूके। दूसरे दिन नीरद (बाद में स्वामी

अम्बिकानन्द) को लेकर विन्ध्यवासिनी देवी के दर्शन हेतु विन्ध्याचल गये। वहाँ वे ठाकुर के समय के भक्त श्री योगीन्द्रनाथ सेन के घर ठहरे। योगीन्द्र का जन्मस्थान था बंगाल के नदीया जिले का कृष्णनगर। वे सरकारी छापाखाना में सह-कोषाध्यक्ष थे। जब वे श्रीरामकृष्ण के चरणों में उपस्थित हुए, तब ठाकुर ने उन्हें बड़े प्रेम से अपने पास बिठाकर पूछा, 'तुम्हें भगवान का कौन-सा रूप आनन्द देता है?' इसपर योगीन्द्र बोले, 'मै ठीक-ठीक कुछ नही जानता, पर सामूहिक पूजा करते समय चतुर्भुज नारायण रूप देखते ही थोड़ी देर के लिए बाह्यसंज्ञाशून्य हो जाता हूँ और आज आपको उसी रूप में देख रहा हूँ।' योगीन्द्र गृहस्थ होते हुए भी सरल स्वभाव के, अनासक्त, ध्याननिष्ठ और राखाल महाराज के बड़े ही अनुरागी थे। इसीलिये जब महाराज विन्ध्याचल गये, तो योगीन्द्र के घर ही निवास किये।[३]

तीन दिन रहेंगे, ऐसा सोचकर महाराज विन्ध्याचल गये थे, किन्तु वे वहाँ तीन सप्ताह क्यों रुके? इस प्रश्न का उत्तर हमें स्वामी अम्बिकानन्द (नीरद) जो महाराज के साथ थे, उनके संस्मरणों में मिलता है। वे लिखते हैं –

स्वामीजी के देहत्याग के बाद सबका मन बहुत ही खराब था। महाराज और हरि महाराज वृन्दावन में कालाबाबू के कुंज में तपस्यारत थे। मेरे पिता (ठाकुर के भक्त नवगोपालघोष) मुझे लेकर वृन्दावन गये। मुझे बहुत ही आनन्द हुआ। हमलोग भी उनके साथ कालाबाबू के कुंज में वास करने लगे। हमलोग पायस (खीर) खरीद कर खाते थे। उन दोनों के सेवक कृष्णलाल महाराज खाना बनाते थे। आलमबाजार मठ के समय से ही मैं हरि महाराज का प्रिय था। बचपन में मैं उनके पास जाया करता था। महाराज का कमरा छोटा था और उनके कमरे से ही हरि महाराज के कमरे में जाना पड़ता था। महाराज का गम्भीर स्वभाव देख उनसे डर लगता था। हरि महाराज मुझे महाराज को प्रणाम करने के लिए कहते, तो मैं डर के मारे दरवाजे से ही किसी तरह महाराज को प्रणाम कर चला आता था। हरि महाराज के आदेश से मैं एक दिन डरते-डरते महाराज के कमरे में गया और उनकी चरणवन्दना करते ही मेरे ऊपर स्निग्ध दृष्टिपात कर वे कह उठे, 'डर काहे का बच्चा !' उन्होंने प्रेम से मेरा स्वागत किया। मेरा मन प्रेम से ओतप्रोत हो गया। महाराज ने मुझे पूछा, 'क्या तुम पैर दबा सकते हो?' मैं उनकी सेवा कर रहा था, तब महाराज ने मेरे पीठ और सिर पर हाथ फेरा। मुझे इतना आनन्द हुआ कि उसके मारे मैं शक्तिहीन होकर उनके ऊपर गिर पड़ा। लगा जैसे मैं माँ की गोद मे सोया हूँ। उस स्थिति में बहुत देर तक रहा। महाराज ने कहा, 'क्यों रे तूने तो मुझे ही तकिया बना लिया। उठ, सेवा नही करेगा क्या?' मैंने कहा, 'महाराज मुझ में अभी बिलकुल भी शक्ति नही है। कुछ अलग-सा लग रहा है।' महाराज हँसने लगे और मैं भी हँसने लगा। हँसते-हँसते महाराज ने हरि महाराज से कहा, ''आपका चेला तो बिगड़ गया।'' हरि महाराज सहास्य बोले, ''अच्छा हुआ, मैं भी यही चाहता था।''

बेलूड़ मठ से बाबुराम महाराज बार-बार महाराज को पत्र लिखकर मठ बुला रहे थे। लौटने का निर्णय हुआ। मैं और मेरे पिताजी भी उनके साथ निकले। मथुरा आकर बड़ी गाड़ी में सवार हुए। टुण्डला जंक्सन पर महाराज ने मेरे पिताजी से गुलाबी रेवड़ी खरीदने के लिए कहा। रेवड़ी खरीदने पर महाराज ने बड़े आनन्द से रेवड़ी अपने आचल में ले लिया। मार्ग में एक दिन के लिए हम प्रयाग में उतरे, गुरुभ्राता विज्ञानानन्द के साथ महाराज की भेंट हुई। वहाँ जाने पर महाराज की विन्ध्याचल जाने की इच्छा हुई। विन्ध्याचल निवासी योगीन्द्रनाथ सेन महाशय को तीन दिन निवास के लिए चिठ्ठी लिखी गयी। उत्तर में उन्होंने उनका आतिथ्य ग्रहण करने की विनती की। एक दिन सुबह हम उनके घर पहुँचे। महाराज तब तपस्यारत थे इसलिए हमारे साथ भोजन नही करते थे। पूरे दिन में केवल एक बार दूध-भात खाते थे।[४]

हम सब एक हॉल में पास-पास सोते थे। महाराज ने मुझे कहा, 'देखो, तुम मेरे पास सोना। उसके बाद तेरे पिताजी आदि लोग सोयेंगे। रात के ग्यारह बजे होंगे। उस दिन अमावस्या थी। वे मुझे स्पर्श कर जगाकर बोले, 'अरे! चलो जल्दी तैयार हो जाओ। तुम जाड़े के लिए स्वेटर, टोपी, मफलर, जूता सब कुछ पहन लो।' वह जाड़े का मौसम था। मैं तुरन्त तैयार हुआ, किन्तु जानता नही था कि जाना कहाँ है। महाराज ने एक कम्बल ओढ़ा था, पैर में चप्पल, एक हाथ में लाठी और दूसरे में लालटेन लिया था। हमलोग चुपचाप बाहर निकल पड़े। महाराज ने मुझे उनके पीछे-पीछे चलने को कहा। वह अमावस की रात थी और राह में घना अन्धेरा था। रास्ता उबड़-खाबड़ था। चलने में मुझे असुविधा होते देखकर उन्होंने मेरे हाथ में लालटेन दी और मेरा दूसरा हाथ पकड़कर वे चलने लगे। तब मैने उनसे पूछा, 'हमलोग कहाँ जा रहे हैं?' इस पर महाराज ने

कहा, 'चलो महामाया के दर्शन करने जाएँ।'

जब विन्ध्येश्वरी के मन्दिर पहुँचे, तब वहाँ भक्तों की बहुत भीड़ थी। तब देवी का शृंगार हो रहा था। सौम्यमूर्ति महाराज को देख सभी ने उन्हें मार्ग दे दिया। मन्दिर का द्वार बन्द था। विशेष उत्सव के उपलक्ष्य में पुजारी माँ को वेश-भूषा से सुसज्जित कर अलंकारों से शृंगार कर रहे थे। सब लोग बाहर खड़े थे। रात के बारह बजे पुजारी ने जब मन्दिर के द्वार खोले और महाराज का माधुर्यमण्डित मुख तथा उज्ज्वल व्यक्तित्व देखा, तो कहा 'महाराज अन्दर आइये।' ऐसा कहकर पुजारी महाराज को मन्दिर के भीतर ले गये। देवी के दर्शन करते ही महाराज विस्मय से बोल उठे, 'अहा ! अति सुन्दर ! अति सुन्दर !' दूसरे ही क्षण वे भावाविष्ट हो गये। मन्दिर में तब अद्भुत नीरवता छाई थी। भक्तों ने और पुजारी ने महाराज की वह भावविह्वल अवस्था देखी। महाराज ने माँ के सामने खड़े होकर मुझसे कहा, 'अरे ! यह भजन गाओ तो –

कालीखोह मन्दिर

विन्ध्याचल देवी मन्दिर

अष्टभुजा मन्दिर

काल कामिनी मराल-गामिनी नीरदबरणी दामिनी बिहरे।
अरुण किरण चमके चरणे दश सुधाकर जड़ित नखरे।।

भावार्थ : जल से भरे हुए मेघ में जैसे बिजली चमकती है, वैसे ही कृष्णवर्णा देवी हंस की तरह प्रमोद करती हैं। देवी के चरणों की दस अँगुलियों की नख, जो सुधा से जड़ित है, उस पर सूर्य की किरणें चमक रही हैं।

मैं गाने लगा। बचपन में मेरा कण्ठ अवरुद्ध था। आलाप देते ही सारे लोग दौड़कर द्वार के पास आए। मैं भजन गा रहा था। महाराज भावावेश में फूट-फूटकर क्रन्दन करने लगे। उनकी आँखों से प्रेमाश्रु बह रहे थे। यह देख पण्डे अवाक् रह गये। ऐसा दृश्य उन्होंने कभी भी नही देखा था। रोते-रोते वे रुक गये और भजन समाप्त होने पर मैं भी शान्त खड़ा रहा। महाराज ने माँ को साष्टांग प्रणाम किया और फिर मन्दिर की परिक्रमा कर हम नाटमन्दिर में आकर बैठे। फिर महाराज ने मुझे कहा, 'अरे, यहा थोड़ी देर बैठकर माँ का ध्यान करो। मैने पूछा, 'ध्यान कैसे करूँ?' महाराज बोले, 'माँ मानो यहाँ साक्षात् हैं, ऐसा ध्यान करो।' बाद में हमलोग अपने निवास-स्थान पर वापस आ गये और कपड़े बदलकर चुपचाप सो गये। किसी को कुछ पता नही चला। महाराज मुझे हाथ पकड़कर ले गये और वापस ले भी आये।

विन्ध्याचल के पास पहाड़ी के ऊपर एक कालीखोह नामक मन्दिर है। एक दिन हम सब लोग योगीन्द्रबाबू के साथ वहाँ वन-भोज के लिए गये थे। भजन गाने के लिए संगीत वाद्य साथ ले गये थे। भक्तलोग कोई सब्जी काट रहे थे, तो कोई भोजन पका रहे थे। ऐसे समय महाराज ने मुझे कहा, 'चल मेरे साथ।' मैं तो तैयार ही था। पर पता नहीं था कि कहाँ जाना है। महाराज मुझे अष्टभुजा देवी की गुफा मन्दिर में ले गये। गुफा के अन्दर बहुत ही अन्धकार था। भीतर इतना नि:शब्द वातावरण था कि पक्षी की आवाज तक सुनाई नही दे रही थी। महाराज देवी के सामने जाकर बैठे, मैने भी वैसे ही किया। महाराज मुझे बोले, 'ओरे, तु भजन गा ना !' मैं भजन गाने लगा। थोड़ी ही देर में महाराज भावावेग में सिसककर क्रन्दन करने लगे। वह देख मेरी आवाज भी काँप रही थी। क्रन्दन करते-करते वे चित्रवत् स्थिर हो गये, उनकी आखों से प्रेमाश्रु बह रहे थे। मुझे लगा कि उन्हें समाधि लगी है। मैं डर गया, यदि यहाँ कोई जंगली जानवर आ जाये, तो मैं क्या करूँगा ! महाराज ने फिर भावावेग में माँ से प्रार्थना की। मुझे भी रोना आ रहा था।

बाहर आकर वन-भोज की जगह न जाकर महाराज ने पहाड़ी पर चलना प्रारम्भ किया। मैं उनके पीछे-पीछे गया। शिखर पर पहुँचने पर महाराज एक अखण्ड शिला पर योगासन में बैठ गये। मुझे भी उन्होंने वैसे ही करने को कहा। किस पर ध्यान करूँ, ऐसा पूछने पर वे बोले, 'भगवान का जो भी रूप अच्छा लगता हो, उस पर ध्यान करो।'

मैंने आनन्द से एक शिला पर बैठकर थोड़ी देर तक ध्यान करने की कोशिश की। तब मैं छोटा था। पाँच मिनट में ही चंचल हो उठा और पास के झरने के पास गया। वहाँ तरह-तरह के सुन्दर पहाड़ी फूल थे। वे मैं तोड़ने लगा। फूलों की गन्ध बहुत अच्छी थी, इसीलिए मैं सूँघने लगा। महाराज वहाँ से देखकर चिल्ला उठे, 'इन जंगली फूलों को मत सूँघो, बीमार पड़ जाओगे।' मैंने बहुत से फूल तोड़कर उन्हें दिखाये। वे बोले, 'माँ की पूजा के लिए कुछ फूल ले लो।' मैंने वैसा ही किया और हम लोग वन-भोज के स्थान पर लौट आये। योगीन्द्र बाबू हमारी राह देख रहे थे। भोजन तैयार था। हम सब लोग भोजन करने बैठे। गाना-बजाना फिर हुआ नहीं। महाराज बोले, 'आज शाम को भजन होंगे।' वैसा ही हुआ था।

और एक दिन हमलोग उसी पहाड़ी पर दूसरे रास्ते से चढ़े थे। मेरे पिताजी वयस्क थे, इसीलिए वे नीचे ही रुके। वहाँ से हमने मनोरम सूर्यास्त का दृश्य देखा। महाराज ने तब मुझे यह भजन गाने को कहा –

दिबा अवसान हलो की कर बसिया मन
उत्तरिते भबनदि करेछो की आयोजन?
आयु-सूर्य अस्त जाय, देखिये ना देबताय
भुलिये रयेछे मोह-मायाय, हारायेछो तत्त्वज्ञान।।

(भावार्थ – दिन शेष हुआ, मन तुम बैठ के क्या कर रहे हो।
भवनदी पार करने के लिए तुमने क्या आयोजन किया है?
तुम्हारा आयु रूपी सूर्य का अभी अस्त होनेवाला है,
तुमने अब तक भगवान की प्राप्ति नही की।
मोहमाया में डुबकर तुम तत्त्वज्ञान को ही भुल गये हो।।)

भजन सुनते-सुनते महाराज भावाविष्ट हो गये। भजन समाप्त होने पर भी वे कुछ देर उसी स्थिति में रहे। अन्धकार होने पर हमलोग अपने निवास स्थान पर लौट आये। विन्ध्याचल केवल तीन दिन रहने की बात थी, पर महाराज वहाँ करीब-करीब तीन सप्ताह तक रहे।

विन्ध्याचल में महाराज ने दो सप्ताह से अधिक रहकर विन्ध्यवासिनी देवी का स्मरण-मनन कर परम आनन्द लाभ किया। १९०३ ई. के दिसम्बर में वे बेलूड़ मठ आ पहुँचे।[५] ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. स्वामी ब्रह्मानन्दजी के उपदेश : ध्यान, धर्म तथा साधना, पृष्ठ-१-१४, **२.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) लेखक - स्वामी प्रभानन्द पृष्ठ-१७७ प्राचीन साधुदेर कथा (बंगाली) खण्ड-२ लेखक - स्वामी चेतनानन्द पृष्ठ-९९-१००, **३.** स्वामी ब्रह्मानन्द ॲज वि सॉ हिम (अंग्रेजी) सम्पादक - स्वामी आत्मश्रद्धानन्द पृष्ठ-७६, **४.** श्रीरामकृष्ण-परिक्रमा (बंगाली) खण्ड-१ लेखक- कालीजीवन देबशर्मा पृष्ठ-३५६, **५.** स्वामी ब्रह्मानन्द (बंगाली), उद्बोधन कार्यालय, कलकत्ता पृष्ठ-२२१-२२४, श्रीरामकृष्ण-लीलामृत (बंगाली) लेखक - बैकुण्ठनाथ सन्याल पृष्ठ-३३६-३३७.

कविता

योगाचार्य विवेकानन्द

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

रामकृष्ण-प्रिय सारदा-सुत तुम,
जय जय स्वामी विवेकानन्द।
ज्ञानसूर्य तुम तमस विनाशक,
नित्य रूप तव चिर आनन्द।।
वेदतत्त्व के मूर्त रूप तुम,
शास्त्र-प्रवर्तित दिव्यानन्द।
दिव्य सुधा का वर्षण करके,
हरते हो तुम भवदुःख द्वन्द।।
निर्मल ज्ञान-भक्ति तुम दे दो,
हे सुखवर्धक गत-भवबन्ध।
त्यागधर्म के प्रतिपालक तुम,
जय वीरेश्वर जय सुखकन्द।।

रामकृष्ण के आकर्षण से,
तजकर निज समाधि-आनन्द।
दिव्यधाम से तुम आए प्रभु,
बरसाने अनुपम मकरन्द।।
भक्तियोग अमृत जीवन का,
ज्ञानयोग काटे भवबन्ध।
कर्मयोग से सबकी सेवा,
यही साधना का आनन्द।।
भक्तितत्त्व को उर में रखकर,
गाते सदा ज्ञान का छन्द।
कर्मयोग के पूजक हो तुम,
योगाचार्य विवेकानन्द।।

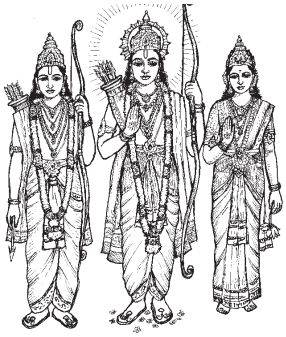

रामराज्य का स्वरूप (१/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

अब रामराज्य की स्थापना का जो आदर्श है, वह आदर्श क्या है? रामराज्य की स्थापना का आदर्श भगवान राम ने बाल्यावस्था से ही दिखाया है। उन्होंने रामराज्य की जो मुख्य विचाराधारा है, उसका संकेत दिया। कैसे दिया? बाल्यावस्था में ही बालक को शिक्षा दी जाती है कि तुम प्रतियोगिता में दूसरे को हराओ। इसके पीछे प्रतियोगिता और प्रतिद्वंद्विता से होड़ की भावना आती है, जिससे व्यक्ति अन्य लोगों से आगे निकलने की कोशिश करता है। ऐसा बिल्कुल ठीक है। क्योंकि जब मनुष्य में प्रतिद्वंद्विता आयेगी, प्रतियोगिता आयेगी, तो वह अधिक उत्साह से आगे बढ़ने की चेष्टा करेगा। लेकिन यदि इस वृत्ति को बढ़ावा मिले, जो बढ़ावा व्यक्ति को खेल में मिलता है, वही बढ़ावा व्यक्ति को क्या जीवन में नहीं मिलेगा? खेल का एक उद्देश्य है स्वास्थ्य की रक्षा और मनोरंजन करना और दूसरा लक्ष्य है जीत। अब रामराज्य के दर्शन की दृष्टि से विचार करके देखें। अगर खेल जीतने की वृत्ति से बच्चों को पाठ पढ़ाया जायेगा, तो क्या आप आशा करते हैं कि उनके जीवन में दूसरों को हराने की वृत्ति नहीं होगी? खेल में जीतने की वृत्ति ही उत्पन्न होती है, क्योंकि खिलाड़ियों में भी यही वृत्ति देखी जाती है। चाहे उचित मार्ग से हो, चाहे अनुचित मार्ग से हो, चाहे नशे का सेवन करके हो, चाहे सामनेवाले को गिराकर हो, चाहे चोट पहुँचाकर हो, हमें तो बस जीतना है। जहाँ यह जीतने की वृत्ति आई, वहाँ ये वृत्तियाँ जीवन में आए बिना नहीं रहतीं। ऐसे समाचार, समाचार पत्रों में आते रहते हैं।

खेल में जो वृत्ति आती है, वही प्रतिद्वंद्विता की वृत्ति जीवन में पनपती है। ठीक वही वृत्ति बाल्यावस्था में, खेल में उसके अन्त:करण में पैठा दी गई है, जो आगे चलकर उसके जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी दिखाई देती है।

अब गोस्वामीजी ने नई बात कही ! क्या? भगवान श्रीराघवेन्द्र अपने भाइयों के साथ खेलने जाते हैं। अब खेल तो बिना दो दलों के नहीं होगा। एक दल का नेतृत्व भगवान राम करते हैं और दूसरे दल का श्रीभरत। ये ही दोनों पात्र रामराज्य के प्रमुख आधार हैं। भगवान राम के द्वारा रामराज्य की स्थापना हुई और रामराज्य की स्थापना में सबसे बड़ी भूमिका श्रीभरत की है तथा दोनों का चरित्र इसमें सामने आ गया। वह केवल एक बाल्यावस्था का विनोद नहीं है, वह रामराज्य का दर्शन है। गोस्वामीजी कहते हैं कि खेल हुआ और खेल में क्या कहते हैं –

एक कहत भइ हार रामजूकी,

एक कहत भइया भरत जये। गीतावली/४५/४

भगवान राम खेल रहे हैं। स्पष्ट दिखाई दिया लोगों को कि वे भरत को जिताने की चेष्टा कर रहे हैं। एक नई बात, भगवान राम खेल में आनन्द ले रहे हैं, लेकिन चेष्टा भरत को हराने की नहीं, भरत को जिताने की है।

मैं कहूँगा कि भगवान राम केवल भरत को ही जिताने की नहीं, वे जीवन भर जितने खेल खेले, उन सबमें वे सबको जिताते-ही-जिताते रहे। उसका अर्थ यह है कि खेल के आनन्द के साथ-साथ भगवान तो दुहरा आनन्द लेते हैं। खेल का भी आनन्द लेते हैं और जिस समय नारा लगने लगा –

एक कहत भइ हार रामजूकी,

एक कहत भइया भरत जये।

परिणाम क्या हुआ?

यह सुन हरषित भए रामजू।

भगवान राम इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने रत्न मँगाए, वस्त्र मँगाए और दान दिया। किसी ने भगवान राम से पूछ दिया कि जीत के उपलक्ष्य में तो दान दिया जाता है, पर क्या हार के उपलक्ष्य में भी दान दिया जाता है? तब भगवान राम ने एक नई बात कही। क्या? भई, हार-जीत में भी सुख-दुख के मूल में क्या है? अपना-परायापन है। हम जीत जायँ,

हमारा जीत जाय, तो सुख है और पराया जीत जाय, तो दुख है, तब उसको मिटाने का उपाय क्या है? परायेपन की भावना को हम कैसे दूर करें? रामायण में एक वाक्य कहा गया कि लोहे को यदि पारस से छुला दें, तो लोहा जैसे सोना हो जाता है, इसी प्रकार से जिसके पास परहित का पारस है, जो पर को स्व बनाने की कला में निपुण है, वह दुख के लोहे को सुख का सोना बना देता है।

कबहुँ कि दुख सब कर हित ताकें।
तेहि कि दरिद्र परस मनि जाकें।। ७/१११/१

इसका अभिप्राय है, भगवान श्रीराघवेन्द्र ने कहा कि मैं अपने भाई के जीत के उपलक्ष्य में दान दे रहा हूँ, भरत मेरा छोटा भाई ही तो है, मेरा है। मानो भरत को जिता कर प्रभु आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। पर श्रीभरत ने अपनी जीत को कैसे लिया? क्या उनको गर्व हो गया कि मैंने श्रीराम को हरा दिया? नहीं, नहीं। इधर भगवान राम प्रसन्न हो रहे हैं कि मेरा भाई जीत गया, इससे बढ़कर प्रसन्नता क्या होगी? और उधर श्रीभरत संकोच के मारे सिर झुकाये हुए हैं –

जिते सकुच सिर नयन नये। गीतावली/४५/७

भरतजी जीत गये हैं, पर सिर झुका हुआ है। किसी ने भरतजी से पूछ दिया, अरे आप सिर क्यों झुका रखे हैं, अब तो आप सिर उठाइए, आप तो जीत चुके हैं। श्रीभरतजी ने हाथ जोड़कर कहा, अरे भई, मैं जीता नहीं, जिताया गया हूँ। इसलिए यह विजय मेरी नहीं, हमारे प्रभु की विजय है। देखने में भले ही दिख रहा है कि यह भरत की विजय है, पर अन्तरंग में देखें, तो यह तो प्रभु के शील की विजय है। प्रभु इतने उदार स्वभाव के हैं कि वे दूसरों को जिताकर प्रसन्न होते हैं। मानो एक अन्तर आ गया। क्या? बोले, दूसरों के सुख छीनकर, दूसरों की सम्पत्ति छीनकर, दूसरों की वस्तु छीनकर प्रसन्न होना, सुख पाने की एक पद्धति है और दूसरों को बाँटकर, देकर, जिताकर प्रसन्न होना, यह दूसरे प्रकार की वृत्ति है। भगवान श्रीराघवेन्द्र की यात्रा कभी भी किसी दूसरे को परास्त करने के लिये नहीं है, बल्कि सच पूछिए, तो भगवान राम सबको जिताते-ही-जिताते रहते हैं। यहाँ तक कि अगर यह कहें कि प्रभु ने रावण को हरा दिया, तो रावण घाटे में कहाँ रहा? वह तो प्रसिद्ध दोहा आपने सुना ही होगा कि अन्तिम क्षण में रावण ने भगवान राम से पूछ दिया – अब तो तुम अपनी हार स्वीकार करते हो, तो रावण ने कहा कि अब तो मेरी जीत निश्चित हो गई। मैं ही जीता और यहाँ भी आपको हारना ही पड़ा। क्यों बोले –

हमरे जीवत लंक में कस न धरेउ पग राम।
तुम्हरे देखत ही लखौ जात तुम्हारे धाम।।

मैं जब तक जीवित रहा, आपको लंका में प्रवेश नहीं करने दिया। अब मैं आपके देखते-देखते आपके धाम पर अधिकार करने जा रहा हूँ। अब बताइए कि मैं जीता कि आप जीते? इसका मूल सूत्र यही है कि व्यक्ति अगर स्वयं को एक अलग इकाई मानकर अपने सुख के लिये व्यग्र होगा और सुख के लिये छीना-झपटी होगी, तो सुख की इस छीना-झपटी में राक्षसत्व की वृत्ति आए बिना नहीं रहेगी, रावणत्व की वृत्ति आए बिना नहीं रहेगी।

रामराज्य केवल एक काव्य नहीं है। गहराई से विचार करके देखें, तो रामराज्य का मूल दर्शन यह है कि जब तक हमारा सुख केवल अपने में केन्द्रित है, वह रावणत्व की ओर जायेगा, उसका परिणाम विनाशकारी होगा। रामायण में उसको और भी विलक्षण रूप में समझाने की चेष्टा की गई। एक ही शब्द 'सब' को बार-बार दुहराया गया, जो कथा के प्रारम्भ में बात कही गई थी।

गोस्वामीजी से पूछा गया कि आपने रामायण की रचना क्यों की? तो उन्होंने कहा –

स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति।। १/७/०

मैंने अपने अन्तःकरण के सुख के लिये रचना की। संसार में व्यक्ति जितने कार्य करता है, अपने सुख के लिये करता है। गोस्वामीजी ने कहा बहुधा हमारे जीवन का जो सुख है, वह दूसरे का दुख बन जाता है और दूसरे का सुख हमारे जीवन का दुख बन जाता है। रामराज्य की स्थापना में जो बाधा पड़ी, उसमें भी वही सूत्र है। क्या? मन्थरा ने कैकेयीजी के मन में यही भाव भरने की चेष्टा की। जब मन्थरा ने कैकेयीजी से पूछा कि आप क्या कीजिएगा? तो कैकेयीजी ने कहा, मैं महाराज को याद दिलाऊँगी कि मेरे विवाह में उन्होंने वचन दिया था कि कैकेयी के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसे ही अयोध्या का राज्य मिलेगा। मंथरा ने कहा, विवाह की चर्चा तो भूलकर भी मत करिएगा। इसलिए रामायण में विवाह में दिए गए वचन की कोई चर्चा नहीं है। न महाराज दशरथ ने उसकी चर्चा की और न कैकेयी ने। क्यों नहीं की? मन्थरा कहती है – न, न! अगर आप उस वचन की याद दिलाएगीं, तो आपका सुख

अधूरा रहेगा। क्यों? बोली आपके पुत्र भरत को तो राज्य मिल जायेगा, पर तुम्हें पूरा सुख तो तब मिलेगा, जब तुम्हारे बेटे को राज्य मिले और सौत के बेटे को वनवास मिले। तो हमलोगों के सुख की परिभाषा यही है कि जब तक दूसरे दुखी न हों, दूसरे की हानि न हो, दूसरे नीचे न गिर जायँ, तब तक हमारा सुख अधूरा रह जाता है। तब मन्थरा ने कैकेयी को पाठ पढ़ा दिया, जो दो वचन महाराज दशरथ ने कैकेयी को दिये थे।

देहु लेहु सब सवति हुलासू। २/२१/६

आनन्द केवल पाना ही नहीं, सौत के आनन्द को मिटाना भी है। इसका सीधा-सा तात्पर्य यह है कि जब हम अपने अहं को इतना समेट लेते हैं कि केवल सुख छीनना ही नहीं चाहते, दूसरों को दुखी बनाकर भी सुखी होना चाहते हैं, तो रामराज्य की स्थापना में बाधा पड़ती है। जहाँ पर हमारे अन्त:करण में सुख बाँटने की वृत्ति है, वहीं रामराज्य का मूल दर्शन है।

सर्बस दान दीन्ह सब काहू।

जेहिं पावा राखा नहिं ताहू।। १/१९३/७

रामायण में रामराज्य का सूत्र दिया गया। सबको दान दिया गया और जिन्होंने दान पाया, वे सब एक दूसरे को देने के लिए व्यग्र हैं। जिसने पाया उसने तुरन्त दूसरे को दे दिया। मूल अन्तर यही है। जहाँ व्यक्ति अहं केन्द्रित है, स्वार्थ केन्द्रित है, वहीं पर व्यक्ति रावणत्व की दिशा में बढ़ रहा है और जहाँ पर व्यक्तिगत स्व के स्थान पर सब को सुख देने की भावना है, वहीं रामराज्य का मूल दर्शन है। इसके आगे की चर्चा कल करेंगे। बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय ! **(क्रमशः)**

प्रेरक लघुकथा

सुखी जीवन का मूलमन्त्र

डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर

इंग्लैंड के प्रसिद्ध दार्शनिक सर वाल्टर मूर को एक सभा में व्याख्यान देने के लिये आमंत्रित किया गया। विषय था – 'सुखी जीवन का मूलमन्त्र'। मंच पर आते ही उन्होंने दीवार पर एक साफ-सुथरी सफेद चादर लगवाई। उस पर एक छोटा-सा दाग था। उन्होंने श्रोताओं से प्रश्न किया, ''दीवार पर आपको क्या दिखाई दे रहा है। लोगों ने उत्तर दिया, ''हमें काली दागवाली चादर दिखाई दे रही है।'' मूर ने कहा, ''आश्चर्य है ! आपलोगों के सामने छोटा-सा काला रंग दिखाई दिया, लेकिन लम्बी-चौड़ी चादर के सफेद रंग पर आपकी दृष्टि नहीं गई। छोटी वस्तु का दिखाई देना और बड़ी वस्तु की ओर दृष्टि न जाना, यही दर्शाता है कि जीवन को देखने का आपका ऐसा ही दृष्टिकोण है। हमारे जीवन में सुख और दुख दोनों आते हैं। किन्तु छोटे काले धब्बे के समान दुख कम होते हुए भी हम उनके कारण चिन्तित हो जाते हैं। हम इसके लिये भाग्य और भगवान; दोनों को कोसते हैं। किन्तु वहीं भाग्य और भगवान हमें जब ढेर सारे सुख देते हैं, तो हम उसके प्रति कृतज्ञता कभी व्यक्त नहीं करते। सुखी जीवन का यही मंत्र है कि हम सुख-दुख दोनों का प्रसन्नता से सामना करें। दुख के क्षणों में व्यथित हुए बिना उनसे उबरने का प्रयत्न करते रहें। दुखों और सुखों में सन्तुलन बनाए रखें।''

मनुष्य के जीवन में अनुकूल और प्रतिकूल; दोनों परिस्थितियाँ आती हैं। अनुकूल परिस्थिति में हम सुख का और प्रतिकूल परिस्थिति में दुख का अनुभव करते हैं। दुख की परिस्थिति हमें बेचैन कर देती है। उसे सहजता से लेने के कारण हमारा दृष्टिकोण नकारात्मक हो जाता है। उन क्षणों में दूसरों के प्रति घृणा, विद्वेष और दुर्भावना की तीव्रता हमारे दुखों को और बढ़ा देती है। हम यदि धैर्य और शान्ति से दुखों को दूर करने का प्रयास करें, तो सुखद क्षण आने में देरी नहीं लगती। ○○○

अनासक्त होओ; कार्य होते रहने दो – मस्तिष्क के केन्द्र अपना-अपना कार्य करते रहें; निरन्तर कार्य करते रहो, परन्तु एक लहर को भी अपने मन पर प्रभाव मत डालने दो। संसार में इस प्रकार कर्म करो, मानो तुम एक विदेशी पथिक हो, पर्यटक हो। कर्म तो निरन्तर करते रहो, परन्तु अपने को बन्धन में मत डालो; बन्धन भीषण है। – स्वामी विवेकानन्द

अध्यात्म विज्ञान है – अन्तर्जगत का

स्वामी शशांकानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, पूर्णिया, बिहार

विज्ञान का अर्थ है किसी भी सम्बन्ध में विशेष ज्ञान। अगर हम इतिहास की रचना होने से पहले की बात सोचें, तो पाषाण युग में जाना होगा। उस समय मानव को न तो बाह्य प्रकृति के रहस्य ज्ञात थे, न ही अपने स्वरूप के बारे में कोई ज्ञान था। उसे तो केवल भूख, नींद, भय और मैथुन का अनुभव था। सभ्यता और संस्कृति का तो अभी जन्म भी नहीं हुआ था। भूख लगने पर पशुओं को या एक-दूसरे को मार कर खा जाते थे। नींद आने पर कहीं भी किसी गुफा में या वृक्ष के तले सो जाते थे, भय के कारण आश्रय खोजते थे। यहीं से खोज आरम्भ होती है। वे प्रकृति के चारों ओर जो देखते उसी में भूख मिटाने के लिए खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति के साधन खोजने लगे, ठंड लगने पर वस्त्र बनाने की बात सोचने लगे, एक-दूसरे से भय के कारण निवास बनाने की बात सोचने लगे। इस प्रकार के प्रयास और इस दिशा में सक्रिय होने से उन्हें प्रकृति के बारे में ज्ञान होने लगा। धीरे-धीरे कृषि-विज्ञान, वस्त्र-उद्योग, चिकित्सा, शल्य-चिकित्सा, विज्ञान का विकास हुआ। कला, चित्रकारी, संगीत एवं नृत्य का विकास हुआ। रास्ते, सड़कें, गाड़ियाँ बनी। भार-वाहक गाड़ियाँ बनीं। भारत जब धन-धान्यसम्पन्न और समृद्धशाली बन चुका था, तब दूसरे देशवासी अभी जंगलों में रहते थे।

अब प्रश्न उठता है कि समृद्धिशाली होने पर क्या मनुष्य सुखी हो सका था? भौतिक विज्ञान की प्रगति ने हमें धन्य-धान्य सम्पन्न तो बनाया, परन्तु उससे जिन वस्तुओं की प्राप्ति हुई, वे सब क्षणिक थीं। क्षणिक होने के कारण उनके अभाव में दुख की प्राप्ति होती थी। भौतिक विषयों की प्राप्ति हमें सुलभ होने पर सुख देती है, तो अभाव में वही दुख का कारण बन जाती है। हम पुन: उसकी आशा करते हैं और प्राप्ति नहीं होने पर दुख की प्राप्ति होती है। तब इन वैज्ञानिकों में जो बुद्धिमान थे, उन्होंने विचार करना शुरू किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि क्षणिक विषयों में सुख नहीं है। सुख तो उस विषय में हो सकता है, जो अनन्त है, जिसका अन्त नहीं, जो क्षणिक नहीं, बल्कि हमेशा हमारे साथ रहनेवाला हो। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अभी तक हम बाहर में सुख खोज रहे थे, क्योंकि हमें ब्रह्मा ने बाह्यमुखी बनाया है। इसलिए अब ध्यानस्थ होकर भीतर खोजने लगे।

उपनिषदों में इसका वर्णन मिलता है –

कश्चित्धीराः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुः अमृतत्त्वमिच्छन्।

गहन ध्यान अर्थात् समाधि अवस्था में वे वैज्ञानिक मन्त्रद्रष्टा अर्थात् ऋषि बन गए और उन्हें वह चरम ज्ञान प्राप्त हुआ जिसे पाकर वे कह उठे –

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वा अति मृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय।।

अर्थात् – ''मैंने उस महान पुरुष को जान लिया, जो समस्त अन्धकार से परे प्रकाश स्वरूप है, जिसे जानकर मनुष्य मृत्यु को पार कर लेता है। अन्य कोई, दूसरा मार्ग नहीं है।''

यहाँ पाने का अर्थ किसी वस्तु की प्राप्ति का नहीं है, बल्कि अनुभव का है। क्योंकि इस अवस्था में ऋषियों ने अनुभव किया कि वह शरीर नहीं, इन्द्रिय नहीं, मन नहीं, बुद्धि भी नहीं, बल्कि इन सबसे परे आत्मा है, जो हमारा प्रकृत स्वरूप है। वह आत्मा सबके भीतर विराजमान है और असीम, अनन्त, अजन्मा, एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म का अंश मात्र है। ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'' – ब्रह्म को जान लेने पर ब्रह्म ही बन जाता है। जैसे वर्षा की बूँदें या बहती नदियाँ समुद्र में मिलकर समुद्र ही बन जाती हैं।

ऐसा आत्मज्ञान होने पर आत्मज्ञानी अपने को आत्मा ही अनुभव करता है, जो अनन्त है, अनन्त सुख और आनन्द की राशि है। वह न किसी शास्त्र से काटा जा सकता है, न अग्नि उसे जला सकती है, न पानी उसे गला सकता है, न हवा उसे सुखा सकती है, बल्कि वह तो अमर है, उसका न जन्म होता है, न मृत्यु होती है, जब उसका कोई

अंत नहीं होता, तो जो सुख उसकी प्राप्ति से मिलता है, वह कभी क्षीण नहीं होता। इसलिए वही परमसुख है, वही परम आनन्द है, जिसके साथ में दुख का लेश मात्र भी नहीं जुड़ सकता।

इसी आत्मज्ञान को ऋषियों ने अपने शिष्यों को कराया। उन्हें साधना का पथ बताया और इस उच्च अवस्था पर पहुँचने का रास्ता बताया। यह ज्ञान गुरु-शिष्य परम्परा के अनुसार मौखिक रूप से चला आ रहा था। बाद में लिपिबद्ध होकर वेदों के रूप में, ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। जब भारत एक ओर समृद्धिशाली था और दूसरी ओर आत्मज्ञान-सम्पन्न था, इतिहास में उस काल को वैदिक काल कहा जाता है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं कि जब भारत में वैदिक काल चल रहा था, तब रोम का जन्म भी नहीं हुआ था, यूरोप का अस्तित्व नहीं था और वहाँ के लोग नीले रंग से मुख को रंग कर जंगलों में घूमा करते थे। अर्थात् सभ्यता और संस्कृति का विकास सर्वप्रथम भारत में ही हुआ। इसका प्रभाव एशियाई देशों में बहुत अच्छी तरह से पड़ा।

श्रीरामकृष्ण देव, बेलूड़ मठ

दूसरे पाश्चात्य देशों में सभ्यता और संस्कृति का दूसरा ही रूप विकसित हुआ, जिसे हम भोगवादी संस्कृति कहते हैं। दुर्भाग्य से २००० वर्ष के बाह्य आक्रमण, अन्य जातियों का प्रवेश तथा ब्रिटिश राज्य की स्थापना हमें हमारी सभ्यता और संस्कृति से बहुत दूर ले गई है। हमारे खाने-पीने में, वस्त्र-आभूषण में, चलने-फिरने में, व्यवहार में, सब पाश्चात्य सभ्यता का स्वरूप अपना स्थान ले चुका है। हमारा जीवन भी भोगवादी जीवन बन चुका है। अब आत्मज्ञान और मुक्ति हमारा जीवन का उद्देश्य नहीं रहा। उसका स्थान तो धन और विषय-भोग ने ले लिया है। किन्तु जो शिक्षा प्रणाली लॉर्ड मैकाले की सलाह से हमारे देश में लाई गई, उसने हमें नौकर बनाना सिखा दिया, मालिक कहलाने में हमें लज्जा और संकोच होता है। स्वनिर्भर और स्वरोजगार हमें बहुत कठिन और असम्भव लगता है। इसलिए राजनीतिक स्वतंत्रता मिलने पर भी हम नौकर हैं। हमें अपने में विश्वास नहीं, साहस नहीं कि हम विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष करने का साहस कर सकें। हम अपने को दीन-हीन समझने लगे। आत्मज्ञान और आत्म-विश्वास तो केवल शास्त्रों के पन्नों में रह गया, जिन्हें पढ़ने और समझने के लिये हमारे मन में कोई रुचि और आकर्षण नहीं है।

आधुनिक विज्ञान और प्रयुक्ति के आधार पर हम ईश्वर की आस्था का प्रमाण चाहते हैं। जैसे प्रयोगशाला में माइक्रोस्कोप से केमिकल टेस्ट से हम वैज्ञानिक खोज करते हैं और सिद्धान्त पर पहुँचते हैं, वैसे ही आज की पीढ़ी भगवान का प्रमाण भी प्रत्यक्ष इन्द्रिगम्य रूप में चाहता है। ऋषि-मुनियों की वाणी, शास्त्रों का कथन प्राचीन परियों की कहानी जैसा लगता है और वैज्ञानिक कल्पना मात्र समझते हैं। आज तो भौतिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के माध्यम से जो यंत्र हमें प्राप्त हुए हैं, उन्हें हमने अपने भोग-मनोरंजन और विषय-भोग-सुख की प्राप्ति के साधन बना लिये हैं।

इस घोर कलियुग के समय युग प्रयोजन के आधार पर वही परब्रह्म परमात्मा निर्गुण निराकार होते हुए भी अपनी माया का आश्रय लेकर मनुष्य रूप में अवतरित हुए थे श्रीरामकृष्ण परमहंस के रूप में। जिस प्रकार से त्रेता में भगवान श्रीराम के साथ हनुमान जी आए थे, ठीक उसी प्रकार द्वापर में श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन आए थे और इस युग में भगवान श्रीरामकृष्ण के साथ शंकर सुमन हनुमानजी महाराज तथा नर ऋषि अर्जुन एक ही देह में नरेन्द्रनाथ के रूप में अवतरित हुए, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से सारे विश्व में प्रसिद्ध हैं।

इस युग के संदेह, अविश्वास और अज्ञान को दूर कर धर्म-संस्थापन के कार्य के लिये नरेन्द्रनाथ ने इन संदेहवादी प्रश्नों को खड़ा कर दिया था कि भगवान आदि कुछ नहीं है, क्योंकि किसी भी व्यक्ति ने उसे देखा नहीं। उसने उस समय के धर्मनेताओं से पूछा था कि क्या उन्होंने ईश्वर को देखा है? किसी से भी उत्तर नहीं मिलने पर, वह तो नास्तिक भावनाओं में बह गए और उनमें इतनी शक्ति थी, श्रीरामकृष्ण के कथनानुसार कि वह सारा संसार को उलट-

पुलट कर सकते हैं अर्थात् आज हम देखते कि सारा जगत भगवान को छोड़कर नास्तिक बनकर रह जाता। किन्तु वे तो धर्म-संस्थापन के लिये आए थे और इसलिए नरेन्द्रनाथ ने प्रश्न उठाया। उसका समाधान भी भगवान श्रीरामकृष्ण ने किया, जिन्होंने इस सत्य को देखा था। जिस प्रकार से एक प्रयोगशाला में वैज्ञानिक विज्ञान का प्रयोग करके सिद्धान्त पर पहुँचते हैं और उस सिद्धान्त को वैज्ञानिक ढंग से प्रसार करते हैं। नरेन्द्रनाथ ने भी श्रीरामकृष्ण से भी वही प्रश्न पूछा कि क्या उन्होंने ईश्वर को देखा है? तब एक वैज्ञानिक की तरह ही श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया – हाँ, मैंने उसे देखा है, जैसे तुझे देखता हूँ। नहीं, उससे भी अधिक स्पष्ट और मैं उससे बातें भी करता हूँ, इतना ही नहीं तू चाहे तो तुझे भी दिखा सकता हूँ।

आधुनिक भौतिक विज्ञान की दौड़ केवल बाह्यजगत के रहस्यों का अनुसंधान करने तक ही सीमित है, इसके परे अन्तर जगत के रहस्य को जानना उसके द्वारा सम्भव नहीं है। इसीलिए जहाँ भौतिक विज्ञान का अन्त है, वहाँ आध्यात्मिक विज्ञान का आरम्भ होता है। श्रीरामकृष्ण ने अपनी साधना के द्वारा ईश्वर-प्राप्ति या ईश्वर-दर्शन कैसे प्राप्त होता है, यह दिखा दिया, केवल दिखाया ही नहीं, बल्कि अपने शिष्यों के जीवन में उन्हें उसका अनुभव भी करा दिया। जो नरेन्द्रनाथ नास्तिक होने जा रहे थे, वे उनके द्वारा बताए हुए पथ पर चलकर साधनारत होकर निर्विकल्प समाधि का अनुभव करते हैं और आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द के रूप में सारे जगत को वेदान्त की गर्जना से हिला देते हैं। श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द के जीवन और शिक्षाओं से यह विश्वास वापस आ रहा है कि आध्यात्मिकता कोई कल्पना नहीं है, बल्कि विज्ञान है। ईश्वर पर आस्था, ईश्वर पर विश्वास और ईश्वर-दर्शन असम्भव नहीं है, बल्कि मानव जीवन का उद्देश्य है। स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है ''आज का विज्ञान आध्यात्मिक विज्ञान की एक दूरस्थ प्रतिध्वनि मात्र है।'' ○○○

पृष्ठ ५५ का शेष भाग

''इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त होने पर नारियाँ अपनी समस्याएँ स्वयं ही हल कर लेंगी। अब तक उन्होंने केवल असहाय अवस्था में दूसरों पर आश्रित होकर जीवन बिताना और जरा भी अनिष्ट या संकट की आशंका होने पर आँसू बहाना ही सीखा है। परन्तु अब दूसरी बातों के साथ-साथ उन्हें वीर बनना चाहिए। आज के युग में उनके लिये आत्मरक्षा करना सीखना भी बहुत आवश्यक हो गया है। देखो, झाँसी की रानी कैसी महान थी ![९] ऐसी शिक्षा के परिणाम के सम्बन्ध में स्वामीजी कहते हैं – ''नारियाँ जब शिक्षित होंगी, तभी तो उनकी सन्तानों के द्वारा देश का मुख उज्ज्वल होगा और देश में विद्या, ज्ञान, शक्ति, भक्ति जाग उठेगी।[१०]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नर-नारी दोनों ही समाज के प्रमुख घटक हैं और स्वामीजी की सकारात्मक शिक्षा के द्वारा उनके सुषुप्त ब्रह्म को, उनकी असीम शक्ति और ऊर्जा को जगाकर जगत को सुखी और समृद्ध किया जा सकता है, जिसकी आज विश्व को नितान्त आवश्यकता है। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – **१.** विवेकानन्द साहित्य खण्ड ६, पृ.११२, **२.** वही, ६/३१२, **३.** वही, ६/३१२, **४.** वही, ५/३१५, **५.** वही, २/१८६, **६.** वही, ८/२३०, **७.** वही, ८/२३१, **८.** वही, ६/४०, **९.** वही, ८/२७७, **१०.** वही, ६/१८५.

इच्छा ही सब से अधिक बलवती है। इसके सामने हर एक वस्तु झुक सकती है, क्योंकि वह ईश्वर और स्वयं ईश्वर से ही आती है; पवित्र और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। क्या तुम इसमें विश्वास करते हो?

लोग कहते हैं कि मुझे भारत में सर्व साधारण को वेदान्त की शिक्षा नहीं देनी चाहिए। किन्तु मैं कहता हूँ कि मैं एक बच्चे को भी इसे समझा सकता हूँ। सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्यों की शिक्षा आरम्भ करने के लिए कोई भी आयु कम नहीं।

ध्यान रखो, यदि तुम इस आध्यात्मिकता का त्याग कर दोगे और इसे एक ओर रखकर पश्चिम की जड़वादपूर्ण सभ्यता के पीछे दौड़ेगे, तो परिणाम यह होगा कि तीन पीढ़ियों में तुम एक मृत जाति बन जाओगे; क्योंकि इससे राष्ट्र की रीढ़ टूट जाएगी, राष्ट्र की वह नींव जिस पर इसका निर्माण हुआ है, नीचे धँसती जाएगी और इसका फल सर्वांगीण विनाश होगा।

– स्वामी विवेकानन्द

आध्यात्मिक जिज्ञासा (६२)

स्वामी भूतेशानन्द

(३८)

प्रश्न – महाराज ! बात हो रही थी, आप साधु होने ऋषिकेश चले गये थे। पूज्य दयानन्दजी के कहने से वापस चले आये। कहाँ वापस आये थे? घर में क्या?

महाराज – नहीं, घर में नहीं। बागबाजार में ज्ञान महाराज के पास। इधर शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्द जी) चाहते हैं कि मेरी ब्रह्मचर्य दीक्षा हो। उन्होंने मुझे कहा – 'जाओ, बेलूड़ मठ में जाकर महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द जी) से ब्रह्मचर्य-दीक्षा की प्रार्थना करो। शरत् महाराज ब्रह्मचर्य-दीक्षा नहीं देते हैं। बेलूड़ मठ में महापुरुष महाराज देते हैं। उन्होंने ज्ञान महाराज को कहा – ''उसे मठ में ले जाओ। महापुरुष महाराज से ब्रह्मचर्य-दीक्षा माँग लो। किन्तु ज्ञान महाराज नहीं चाहते थे कि मेरा इतना पहले ब्रह्मचर्य हो। किन्तु क्या करोगे, शरत् महाराज की आज्ञा थी। वे मुझे मठ में ले गये। पहले तो महापुरुष महाराज भी सहमत नहीं हुए, उसके बाद हुए। शरत् महाराज ने भेजा है तो !

– क्या संघ में सम्मिलित होने के पहले ही ब्रह्मचर्य-दीक्षा हुई?

महाराज – हाँ। सुनो न ! महापुरुष महाराज ने कहा – ''ब्रह्मचर्य दे रहा हूँ। किन्तु शिक्षा पूर्ण करनी होगी। अभी संघ में सम्मिलित नहीं होना।''

– तब कॉलेज में पढ़ रहे थे महाराज?

महाराज – नहीं, नहीं, कॉलेज ! स्कूल समाप्त करने के पहले ही भाग गया था। उस समय सामने ही मैट्रिक की परीक्षा थी। उसे दी, देनी पड़ी। उसके बाद कॉलेज की शिक्षा भी समाप्त करनी पड़ी। ब्रह्मचर्य के लिये मुझे बहुत मूल्य चुकाना पड़ा है !

इस सम्बन्ध में एक घटना स्मरणीय है। सन्तोष महाराज (स्वामी सत्यरूपानन्द जी) एक हिन्दी-भाषी युवक को अपने साथ लाये हैं। वह लड़का जब स्वामी भूतेशानन्द जी को प्रणाम कर उठ गया, तब सन्तोष महाराज ने कहा – ''महाराज यह लड़का साधु होना चाहता है। अंग्रेजी में एम.ए. की परीक्षा दी है। आयु थोड़ी अधिक हो गयी है। आपके व्यवस्था करने से ही वह साधु हो सकता है।'' महाराज ने अंग्रेजी में उससे एक-दो बातें पूछीं। लड़के ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसके बाद महाराज ने कहा – ''जाओ, उन लोगों (महासचिव, स्वामी आत्मस्थानन्द जी) से बात करो। देखो क्या व्यवस्था होती है।'' सन्तोष महाराज ने कहा – ''उसकी इच्छा है कि यदि यहाँ नहीं होगा, तो उत्तरकाशी या अन्यत्र कहीं चला जायेगा। वहाँ जाकर साधु बनेगा।'' महाराज ने कहा – ''जाओ, पहले उन लोगों से बात करो। उत्तरकाशी या अन्यत्र जाकर कई लोग घुमक्कड़ हो जाते हैं। प्रारम्भ में वयस्क साधुओं की छत्रछाया में नहीं रहने से अपने को ठीक पथ पर चलाना सरल नहीं है।''

प्रश्न – महाराज ! स्वामीजी ने कहा है – ''मैं कार्य से विराम नहीं लूँगा। जब तक जगत यह न ज्ञात कर ले कि वह और ईश्वर एक है।'' क्या स्वामीजी अभी भी कार्य कर रहे हैं?

महाराज – वैसा नहीं होने पर सब कैसे चल रहा है? उन्होंने कहा है – ''स्थूल शरीर त्याग करने के बाद भी शक्ति रूप में कार्य करता रहूँगा।''

– ठाकुर के अन्य शिष्य स्वामीजी की चर्चा बहुत करते थे। उनलोगों से तो आपने बहुत कुछ सुना है।

महाराज – यह सब तो पुस्तकों में प्रकाशित हो चुका है। नयी बात क्या कहूँगा? लेकिन एक बात कहूँ, ठाकुर के शिष्य स्वामीजी को ठाकुर के साथ एक, अभिन्न देखते थे। यद्यपि पहले उनलोगों ने उनके साथ तर्क-वितर्क तक किया है, तथापि स्वामीजी के किसी भाव की एक बार दृढ़ धारणा हो जाने पर जीवन भर उसका अनुसरण किया है। वे लोग जानते थे कि स्वामीजी और ठाकुर अभिन्न हैं।

प्रश्न – महाराज, आपने एक दिन कहा था – प्रेम का लक्षण प्रेमपात्र को छोटा समझना है।

महाराज – हाँ।

– महाराज ! क्या यह वात्सल्य भाव में है या मधुर भाव में भी देखा जाता है?

महाराज – गोपियाँ श्रीकृष्ण से कहतीं हैं – 'हमलोगों को तुम्हारे कोमल चरण-कमलों को अपने कठोर हृदय में ध्यान करने में भय होता है कि कहीं बाद में तुम्हारे चरणों में पीड़ा न हो और तुम उन्हीं चरणों से वन-वनान्तर में घूमते रहते हो !'' श्रीकृष्ण ललिता के घर जायेंगे, सुनकर श्रीमती राधा कह रही हैं – 'वे ललिता के घर जायें, उसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु ललिता सेवा करना नहीं जानती।'' भाव यह है कि उनके नहीं रहने पर श्रीकृष्ण की सेवा नहीं होगी।

प्रश्न – महाराज ! श्रीरामकृष्णवचनामृत में एक स्थान पर है, ठाकुर देख रहे हैं कि घर-द्वार, पेड़-पौधे सब मोम के बने हुए हैं। इसका क्या अर्थ है?

महाराज – इसका अर्थ है – सर्वत्र एक ही सत्य है। सत्ता या उपादान के रूप में सब एक है। उसके अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं है। ठाकुर ने अन्यत्र कहा है – देखा, सब चैतन्य में जड़ित है। माने ओतप्रोत है – भीतर और बाहर में एक ही सत्ता है।

प्रश्न – महाराज ! आज खोका महाराज (स्वामी सुबोधानन्द जी) की जन्मतिथि है। उनको आपलोगों ने कैसे देखा है, थोड़ा कहिए।

महाराज – जन्मदिन के प्रसंग में महापुरुष महाराज की बात याद आ गयी। महापुरुष महाराज को जब कहा जाता – महाराज, आज आपका जन्मदिन है। तो महाराज कहते – ''मेरा जन्म ही नहीं हुआ। फिर मेरा जन्मदिन !'' फिर कभी कहते ''बहुत अच्छा, ठाकुर को खूब भोग लगाओ।''

महापुरुष महाराज खोका महाराज को 'खोका' (बच्चा) ही कहकर बुलाते थे। गंगाधर महाराज कहते थे – ''खोका महाराज नाम से ही खोका है। मैं ही सबसे छोटा हूँ।'' अर्थात् ठाकुर की सन्तानों में गंगाधर महाराज ही सबसे छोटे थे। खोका महाराज चेहरे से छोटे थे, नाटे और दुबले थे। बहुत तेज चलते थे। हमलोगों ने देखा था, वे रोज पंगत में बैठकर भोजन करते थे। अपना काम स्वयं ही करते थे। कपड़ा स्वयं धोते थे। उनको तम्बाकू दिया जाता था। उस समय अपूर्वानन्दजी भण्डारी थे। मैं देखा हूँ, खोका महाराज भण्डार में जाकर तम्बाकू के लिये प्रतीक्षा कर रहे हैं।

प्रश्न – महाराज ! 'तर्क प्रस्थान' कहा जाता है। वहाँ 'प्रस्थान', माने जो पहुँचा दे। फिर उपनिषद में कहा गया है – '**नैषा तर्केण मतिरापनीया**' – तर्क द्वारा उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता।

महाराज – ठीक ही, तर्क के द्वारा उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। केवल 'तर्कप्रस्थान' ही क्यों 'श्रुति-प्रस्थान' भी तो कहा जाता है। श्रुति भी वहाँ नहीं पहुँचा सकती।

– तब श्रुति का प्रयोजन कहाँ है?

महाराज – श्रुति अर्थात् वेद। वेद लक्ष्य तक नहीं पहुँचा सकता है, केवल मार्ग-निर्देशन करता है। वह दिशा-निर्देश करता है, मार्ग दिखा देता है। वह लक्ष्य तक पहुँचा नहीं सकता। ठाकुर के तीन डकैतों की वह कहानी है न। सत्त्व, रज और तम, तीनों ही डकैत हैं। किन्तु सत्त्व बड़े मार्ग पर लाकर मार्ग दिखा सकता है। वेद भी ठीक वैसे ही हैं। गीता में है – **नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया**। (११/५३)

– महाराज, क्या यहाँ वेद माने वेदान्त समझेंगे?

महाराज – वेदान्त माने क्या? वेद का अन्त। 'अन्त, माने सारतत्त्व। वेद का अन्त अर्थात् वेद का तत्त्व या सार। वही सार भाग उपनिषद में है, इसलिए उपनिषद को सामान्य अर्थों में वेदान्त कहा जाता है।

– महाराज ! अन्त माने शेष, समाप्त होता है और चूँकि उपनिषद वेद का अन्तिम भाग या ज्ञानकाण्ड है, क्या इसीलिए उपनिषद को वेदान्त कहते हैं?

महाराज – हाँ ! वह भी एक तर्क है। वेद का तत्त्व ब्रह्म है। वेदान्त का प्रतिपाद्य भी ब्रह्म है। '**सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति**।' 'सर्वे वेदा' बड़ी दृढ़ता से कहा गया है।

– महाराज ! ''सर्वे वेदा' से क्या कर्मकाण्ड को भी समझेंगे।

महाराज – कर्मकाण्ड का तात्पर्य परम्परानुसार आत्मज्ञान है। श्रुति अर्थात् कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड एवं स्मृति, सभी एक ही बात कहती हैं। स्मृति माने क्या? जो श्रुतिवाक्य का स्मरण करके लिखी जाती है, इसीलिये स्मृति है।

– महाराज ! श्रीकृष्ण की वाणी 'गीता' को स्मृति कहते हैं। क्या ठाकुर की वाणी 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' को भी स्मृति कह सकते हैं?

महाराज – हाँ, वैसा कह सकते हो। **(क्रमशः)**

साहसी नेता 'नरेन्द्रनाथ'

ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर

नरेन्द्रनाथ दत्त का जन्म १२ जनवरी, १८६३ ई. को कोलकाता के सिमुलिया नामक स्थान में हुआ था। बचपन में नरेन्द्रनाथ को प्यार से 'बिले' के नाम से भी पुकारा जाता था।

नरेन्द्र बहुआयामी प्रतिभा से सम्पन्न थे। भविष्योन्मुखी महानता के चिह्न – नेतृत्व, जिज्ञासा एवं साहस इत्यादि सद्गुण बचपन से ही उनके चरित्र में दृष्टिगोचर हो रहे थे। अपने समान आयुवर्ग के मित्रों के साथ राजा-कोतवाल के खेल में वह स्वयं राजा बनते और अपने साथियों को कहते ''तुम मन्त्री हुए हो और अमुक सेनापति, जाओ, वहाँ खड़े हो जाओ।'' उसी तरह दरबार में राजा (नरेन) पूछता, ''मन्त्री, राज्य का क्या हाल है?'' मन्त्री कभी उत्तर देता, ''प्रजा सुखी हैं।'' और कभी यह उत्तर देता, ''महाराज, एक डाकू उत्पात मचाता है।'' राजा तुरन्त आदेश देता, ''उस दुष्टात्मा का सिर काट डालो।'' डाकू तेजी से भागता और राजा के सिपाही उसे पकड़ने के लिए पीछे-पीछे दौड़ते। बालकों के शोरगुल से दोपहर को आराम करते नौकर तंग आकर उनका पीछा करते परन्तु कोई भी उनके पकड़ में नहीं आता। इधर नरेन्द्र (राजा) सिंहासन पर बैठकर सब कौतुक देखकर मुस्कराते। नरेन अपने संगी-साथियों के साथ खेलने आदि के समय सबके नेता बनते।

नरेन साहसी थे। नरेन्द्रनाथ ने शरीर को सबल-सशक्त बनाने के लिए एक जिमनास्टिक के अखाड़े में जाकर लाठी भाँजने, तलवार चलाने, नाव खेने, तैरने, कुश्ती और अन्यान्य व्यायामों में दक्षता प्राप्त की। दस वर्ष की आयु में जब वे मेट्रोपॉलिटन विद्यालय में अध्ययन कर रहे थे तब मेले के उपलक्ष्य में जिमनास्टिक के खेल में वे दर्शक के रूप में वहाँ उपस्थित थे। जब लाठी भाँजने का खेल चलने लगा, तब नरेन्द्र ने चुनौती देते हुए कहा, खिलाड़ियों में से जो कोई उनके विरुद्ध खड़ा होना चाहे, वे उनके साथ खेलने के लिए तैयार है। जो सबसे अधिक बलवान थे, वे ही आगे आकर उनके साथ प्रतिद्वन्द्विता करने लगे। दूसरे लोग आयु में नरेन्द्र से बड़े तो थे ही, परन्तु साथ में उनसे अधिक शक्तिशाली भी थे, इसलिए उन लोगों की विजय निश्चित ही थी। परन्तु नरेन्द्र ने अपने कौशल और साहस का परिचय देते हुए प्रतिद्वन्द्वी पर बड़ी ही कुशलता से ऐसा प्रबल आघात किया कि उनकी लाठी के दो टुकड़े हो गए। इस प्रकार नरेन्द्र जीत गए और दर्शक आनन्दित हुए।

सत्यनिष्ठा, साहस, जोखिम उठाना जैसे सद्गुणों के कारण ही सब नरेन का आदर करते थे। वे आपद-विपद में सबकी सहायता करते थे। उनके साहस और सुदृढ़ता का परिचय उस घटना से मिलता है जब एक अँग्रेज नाविक एक भारी लकड़ी के ढाँचे को खड़े करने के लिए नरेन की सहायता करने आया और उसके सिर पर चोट आ गई और अधिकतर लड़के भय के कारण वहाँ से भाग गए, परन्तु नरेन और दो-तीन मित्रों ने नाविक के घाव पर पट्टी बाँधी और उसकी कुछ दिनों देखभाल करते रहे और अन्त में एक पर्स उपहार में देकर उसे विदा किया।

एक बार नरेन्द्र के एक मित्र के पिता ने नरेन्द्र से कहा, ''क्या तुम दिनभर घर-घर घूमकर ऐसे ही खेलते हो! कभी पढ़ते-लिखते भी हो क्या?'' नरेन ने उत्तर दिया, ''जी हाँ मैं दोनों काम करता हूँ – खेलता भी हूँ और पढ़ता भी हूँ। उनका यह उत्तर तब सत्य प्रमाणित हुआ जब कुछ दिनों बाद उनकी परीक्षा प्रारम्भ हुई – उन्होंने अंकगणित, भूगोल जैसे विषयों में बड़े ही सहजता से फटाफट उत्तर दिए। परीक्षक भी उनके उत्तर से सन्तुष्ट हुए और मन ही मन सोचने लगे कि नरेन भविष्य में निश्चित ही उन्नति करेगा। भविष्य में नरेन ही युगनायक स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।

अथक कर्मशीलता, निपुणता, सत्यनिष्ठा, नेतृत्व, साहस जैसे सद्गुणों एवं बहुआयामी प्रतिभा से सम्पन्न नरेन्द्रनाथ के जीवन से हम प्रेरणा लेकर अपने चरित्र का गठन करें। उनसे मार्गदर्शन प्राप्त कर हम सब अपने जीवन को चरितार्थ करें। ○○○

आर्य जाति का इतिहास

स्वामी विवेकानन्द

(७ मई, १८९६ को, लन्दन नगर में 'ज्ञानयोग' विषय पर स्वामीजी का एक व्याख्यान हुआ था। इसे उनके एक अंग्रेज शिष्य श्री जे.जे. गुडविन ने लिपिबद्ध कर रखा था, जिसमें स्वामीजी ने आर्य जाति के इतिहास पर प्रकाश डाला है। परवर्ती काल में इसे Complete Works of Swami Vivekananda के नवें खण्ड में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। इसका अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

मैं तुम लोगों को पहले ही बता चुका हूँ कि मैं इस (योग) विषय को चार भागों में विभाजित करूँगा, परन्तु, चूँकि इन सभी विभिन्न योगों का भाव एक ही है और वे जिस लक्ष्य पर पहुँचना चाहते हैं; वह भी एक ही है, अत: उचित यही होगा कि मैं उसके दार्शनिक भाग – ज्ञानयोग से ही आरम्भ करूँ। वेदान्त-दर्शन के सिद्धान्तों में प्रवेश करने के पूर्व मुझे यह आवश्यक प्रतीत होता है कि मैं इसके उद्‌गम, प्रारम्भ तथा विकास पर अर्थात् इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के विषय में संक्षेप में कुछ कहूँ। 'आर्य' तथा 'आर्यन' शब्दों के विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका है और तुममें से अधिकांश लोग अब इन शब्दों से सुपरिचित हो चुके हो; और इन शब्दों के विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका है।

करीब सौ साल पहले बंगाल में सर विलियम जोन्स नामक एक न्यायाधीश थे। जैसा कि तुम लोग जानते हो कि भारत में मुसलमान तथा हिन्दू लोग निवास करते हैं। हिन्दू लोग वहाँ के मूल निवासी थे। मुसलमान लोग वहाँ आये, उन लोगों पर विजय प्राप्त किया और ७०० वर्षों तक उन पर शासन किया। भारत में और भी अनेक विजय अभियान हुए हैं; और जब-जब कोई विजयी जाति आती है, तब-तब उस देश (भारत) के (Criminal Law) आपराधिक कानून बदल दिये जाते हैं। आपराधिक कानून हमेशा विजयी जाति के होते हैं; परन्तु (Civil law) सामाजिक कानून यथावत् बने रहते हैं। अत: जब अंग्रेजों ने भारत पर विजय प्राप्त की, तो उन्होंने वहाँ की दण्ड-संहिता बदल डाली। परन्तु सामाजिक कानून पूर्ववत् ही रहे। चूँकि न्यायाधीश अंग्रेज लोग हुआ करते थे और सामाजिक कानून स्थानीय भाषा में लिखे हुए मिलते थे। अत: उन लोगों को दुभाषियों, भारतीय वकीलों आदि की सहायता लेनी पड़ती थी। जब भी भारतीय कानून पर कोई प्रश्न उठता तो इन विद्वानों की सलाह ली जाती थी। ये दुभाषिये घूस लेकर कानून का गलत अर्थ भी बता सकते थे।

इन न्यायाधीशों में से एक – सर विलियम जोन्स अत्यन्त परिपक्व विद्वान थे और वे इन दुभाषियों पर निर्भर रहने की जगह स्वयं ही उनके उद्‌गम तक जाना चाहते थे, उस भाषा का स्वयं अध्ययन करना चाहते थे। अत: उन्होंने (Gentoo) जेंटू लोगों की कानून-व्यवस्था का अध्ययन आरम्भ किया। उन दिनों हिन्दुओं को जेंटू कहा जाता था। यह जेंटू सम्भवत: 'जेन्टाइल' शब्द का एक रूप है, जो पुर्तगालियों तथा स्पेनियों द्वारा उपयोग में लाया जाता था या जिसे आजकल तुम (अमेरिकी) लोग (Heathen) 'हीदन' कहते हो।

जज महोदय ने जब कुछ पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद प्रारम्भ किया, तो उन्होंने पाया कि उनका सीधे-सीधे अंग्रेजी में प्रामाणिक अनुवाद करना बड़ा कठिन है, परन्तु जब उन्होंने उसी का पहले लैटिन भाषा में अनुवाद करके, फिर उस पर से अंग्रेजी में भाषान्तर किया, तो उन्हें यह देखकर परम आश्चर्य हुआ कि इससे बहुत ही आसान हो जाता है। इसके बाद अनुवाद करते समय उन्हें पता चला कि संस्कृत के बहुत सारे शब्द लैटिन भाषा से प्राय: मिलते-जुलते हैं। वे ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने यूरोप में संस्कृत भाषा के अध्ययन को लोकप्रिय बनाया। जब जर्मनी तथा फ्रांस के लोगों में विद्या का प्रसार होने लगा, तब उन लोगों ने (भी) इस भाषा का अध्ययन आरम्भ कर दिया।

जर्मन विद्वानों ने, अपनी अद्‌भुत विश्लेषण क्षमता के द्वारा यह पाया कि संस्कृत तथा यूरोप की सभी भाषाओं के बीच कुछ समानता विद्यमान है। प्राचीन भाषाओं में यूनानी (ग्रीक) ही इसके साथ सर्वाधिक समानता रखती थी। इसके बाद (Lithuanian) 'लिथुऑनियन' नाम की एक भाषा है; जो बाल्टिक सागर के तट पर कहीं बोली जाती थी। उन दिनों लिथुऑनिया रूस से असम्बद्ध एक स्वाधीन राज्य था। लिथुऑनियन भाषा आश्चर्यजनक रूप से संस्कृत से समानता रखती थी। उत्तर भारतीय भाषाओं की तुलना में लिथुऑनियन भाषा के कुछ वाक्यों को संस्कृत रूप देने के लिए काफी कम बदलाव करना पड़ता था। इस प्रकार यह पता चला कि एशिया को दो भाषाओं – फारसी तथा संस्कृत और यूरोप में बोली जानेवाली सभी विभिन्न भाषाओं के साथ एक अन्तरंग सम्बन्ध विद्यमान है। इस सम्बन्ध के कारणों के विषय में अनेक सिद्धान्त बनाये गये। प्रतिदिन नये सिद्धान्त बनाये जाते थे और प्रतिदिन उन्हें खण्डित कर दिया जाता था। कहा नहीं जा सकता था कि यह प्रक्रिया कहाँ जाकर थमेगी।

इसके बाद यह सिद्धान्त अस्तित्व में आया कि प्राचीन काल में एक जाति थी, जो स्वयं को 'आर्य' कहती थी। उन लोगों ने पाया कि संस्कृत साहित्य एक ऐसी जाति से सम्बद्ध है, जो स्वयं को आर्य कहा करते थे और उन का उल्लेख फारसी साहित्य में भी प्राप्त होता है। इसके आधार पर उन लोगों ने एक सिद्धान्त बनाया कि प्राचीन काल में एक जाति थी, जो स्वयं को आर्य कहा करती थी, संस्कृत बोलती थी और मध्य एशिया में निवास करती थी। इन विद्वानों का विचार था कि यह जाति टूट कर बिखर गयी और यूरोप तथा फारस (ईरान) तक जा पहुँची। वे लोग हर जगह अपनी स्वयं की भाषा ले गये। जर्मन, ग्रीक तथा फ्रांसीसी भाषाएँ उसी प्राचीन बोली के अवशेष हैं और इन सभी भाषाओं में संस्कृत भाषा सर्वाधिक उन्नत हुई है।

परन्तु ये सभी परिकल्पनाएँ हैं और अभी भी इन्हें सिद्ध नहीं किया जा सका है; ये केवल अनुमान तथा अटकलबाजियाँ हैं। इन्हें सिद्ध करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं – उदाहरणार्थ, भारतवासी साँवले और यूरोपवासी गोरे क्यों हैं। यहाँ तक कि इन भाषाओं के बोलनेवाले एक ही राष्ट्र – स्वयं इंग्लैंड में बहुत से लोग पीले और बहुत से लोग काले बालोंवाले क्यों हैं!

परन्तु यह बात निश्चित है कि बास्क, हंगरी, फिनलैंड तथा तातार के निवासी, इनके अतिरिक्त सभी यूरोपीय, सभी उत्तर भारतीय और पारसी (ईरानी) एक ही भाषा की शाखाओं का उपयोग करते हैं। इन समस्त आर्य भाषाओं में – ग्रीक तथा लैटिन में, जर्मन, अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी जैसी आधुनिक यूरोपीय भाषाओं में, प्राचीन तथा आधुनिक फारसी भाषाओं और संस्कृत में विराट साहित्य सम्पदा विद्यमान है।

परन्तु पहली बात तो यह है कि अकेले संस्कृत साहित्य/भाषा में ही विशाल साहित्य सम्पदा उपलब्ध है; वैसे सम्भवत: इसका तीन-चौथाई अंश निरन्तर होनेवाले विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप नष्ट या विलुप्त हो चुका है, तथापि मुझे लगता है कि संस्कृत साहित्य के अब भी जितने ग्रन्थ बचे हुए हैं; वे संख्या की दृष्टि से यूरोप की किन्हीं तीन-चार भाषाओं की इकट्ठी ग्रन्थ संख्या पर भारी पड़ेंगे। यह (संस्कृत) समस्त आर्य भाषाओं में सबसे प्राचीन है और अब तक कोई भी नहीं जानता कि इसमें कितने ग्रन्थ विद्यमान हैं और कहाँ उपलब्ध हैं। आर्य जाति की संस्कृत बोलनेवाली शाखा के लोगों में ही सबसे पहले सभ्यता विकसित हुई, और उन्हीं लोगों ने सर्वप्रथम ग्रन्थों तथा साहित्य की रचना आरम्भ की। उनका यह कार्य हजारों वर्षों तक चलता रहा। कोई भी यह नहीं जानता कि वे कितने हजार सालों तक ग्रन्थ लिखते रहे। इस सन्दर्भ में, ईसा के ३००० वर्ष पूर्व से लेकर ८००० वर्ष तक के विभिन्न अनुमान लगाये गये – परन्तु ये सभी तिथियाँ प्राय: अनिश्चित हैं ।

इन प्राचीन ग्रन्थों तथा इनकी तिथियों के विषय में लिखने वाला प्रत्येक व्यक्ति प्रथमत: अपनी पुरानी शिक्षा, फिर अपने धर्म-सम्प्रदाय और तदुपरान्त अपनी राष्ट्रीयता के अनुसार पक्षपात से लिखते हैं। यदि एक मुसलमान हिन्दुओं के विषय में लिख रहा है और यदि कोई तथ्य उसके अपने धर्म को महिमान्वित नहीं करता, तो वह बड़ी-बड़ी युक्तियाँ दिखाकर उसे दरकिनार कर देता है। ऐसा ही ईसाई लोग भी करते हैं – जैसा कि तुम अपने स्वयं के (अमेरिकी) लेखकों में देख सकते हो। पिछले कुछ वर्षों के दौरान तुम्हारा साहित्य थोड़ा अधिक सम्मानजनक हो गया है। जब तक उन (ईसाई) विद्वानों के हाथ में ही सब कुछ था, उन लोगों ने अंग्रेजी में (बहुत कुछ) लिखा और वे हिन्दुओं के मूल्यांकन से बचे हुए थे। परन्तु, पिछले २० वर्षों के दौरान हिन्दुओं ने भी अंग्रेजी में लिखना आरम्भ कर दिया है, अत: अब

वे लोग थोड़े अधिक सावधान हो गये हैं। और तुम देखोगे कि पिछले १० या २० वर्षों के दौरान उनके सुर में काफी बदलाव आ गया है।

संस्कृत साहित्य के विषय में एक अन्य विलक्षण बात यह है कि किसी अन्य भाषा के समान यह भी अनेक परिवर्तनों से होकर गुजरी है। ग्रीक, लैटिन या इन सभी विभिन्न भाषाओं पर यदि हम विचार करें, तो देखते हैं कि ये सभी यूरोपीय भाषाएँ काफी आधुनिक थीं। ग्रीक भाषा काफी बाद में आयी, मिस्री तथा बेबीलोन भाषाओं की तुलना में यह मात्र एक शिशु के समान है।

वैसे मिस्री तथा बेबीलोनियन लोग आर्य नहीं थे। ये उनसे भिन्न जातियाँ थीं और इनकी सभ्यताएँ यूरोप की सभी सभ्यताओं से पुरानी हैं। प्राचीन मिस्री लोगों/सभ्यता के अतिरिक्त ये सभ्यताएँ (आर्यों के) प्राय: समकालीन थीं और कुछ विवरणों के अनुसार तो उनसे भी पहले की थीं। तथापि मिस्री साहित्य में कुछ तथ्यों के सन्तोषजनक समाधान की आवश्यकता है – यथा, वहाँ के पुराने मन्दिरों का भारतीय गैंजेटिक (Gangetic) कमल। यह सर्वविदित है कि वह केवल भारत में ही उत्पन्न होता है। उनके विवरणों में (Punt) 'पंट' देश का उल्लेख मिलता है। यद्यपि इस पंट देश को अरबों के साथ जोड़ने के महान प्रयास हुए हैं तथापि यह अनिश्चित है। इसके अतिरिक्त उनमें बन्दरों और केवल दक्षिण भारत में पाये जाने वाले चन्दन काष्ठ के उल्लेख भी मिलते हैं।

ग्रीक आर्यों की तुलना में यहूदी लोग काफी परवर्ती काल के हैं। बेबीलोन 'सैमेटिक' (Semitic) जाति की केवल एक शाखा है और यह मिस्री नाम की अज्ञात तथा अद्‌भुत जाति हिन्दुओं से तो नहीं, परन्तु आर्यों की अपेक्षा काफी प्राचीन थी।

अत: यह संस्कृत भाषा हजारों साल तक बोली तथा लिखी जाती रहने के कारण वस्तुत: अनेक परिवर्तनों में से होकर गुजरी है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ग्रीक, रोमन आदि अन्य आर्य भाषाओं का साहित्य संस्कृत की तुलना में काफी परवर्ती काल को रहा होगा। इतना ही नहीं, बल्कि विचित्र बात तो यह है कि हमें इस संसार में जितने भी प्रचलित ग्रन्थ मिलते हैं, उनमें संस्कृत ग्रन्थ ही प्राचीनतम हैं और इस साहित्य-राशि को 'वेद' कहते हैं। बेबीलोनियन तथा मिस्री साहित्य में अत्यन्त प्राचीन अभिलेख विद्यमान हैं, परन्तु उन्हें साहित्य या ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता, बल्कि वे कुछ टिप्पणियाँ, छोटे पत्र, कुछ शब्द मात्र हैं। परन्तु परिष्कृत सभ्य साहित्य के रूप में वेद ही प्राचीनतम हैं। ये वेद एक विचित्र प्रकार की अति प्राचीन संस्कृत भाषा में लिखे गये हैं और काफी काल तक यहाँ तक कि आज भी अनेक पुरातत्त्वविदों का विचार है कि वेदों को लिखा नहीं गया था, बल्कि उन्हें मौखिक आवृत्ति से पिता द्वारा पुत्र को हस्तान्तरित करते हुए उनका संरक्षण किया गया था। पिछले कुछ वर्षों के दौरान उनके इस मत में परिवर्तन आया है और अब उन लोगों ने यह सोचना आरम्भ किया है कि इन्हें अत्यन्त प्राचीन काल में ही लिख लिया गया होगा।

वैसे उन लोगों को इसी प्रकार विभिन्न सिद्धान्तों का निर्माण करते रहना पड़ता है। तब तक सिद्धान्त-पर-सिद्धान्त बनाये जाएँगे और उन्हें ध्वस्त किया जाता रहेगा, जब तक हम सत्य तक नहीं पहुँच जाते। यह अत्यन्त स्वाभाविक है। जब कभी विषय मिस्री या भारतीय होता है, तो ईसाई दार्शनिक अपने सिद्धान्त लेकर दौड़ पड़ते हैं; परन्तु जब विषय घरेलू हो, तो (कोई भी सिद्धान्त बनाने के पूर्व) वे बारम्बार सोचते हैं। इसी कारण वे इतनी अधिक भूलें करते हैं और हर पाँच साल में नये-नये सिद्धान्त बनाते रहते हैं। परन्तु एक बात सत्य है कि यह विराट साहित्य, चाहे वह लिपिबद्ध रहा हो या नहीं, परम्परा क्रम से संरक्षित होता रहा; इतना ही नहीं, आज भी इसे मौखिक पाठ के द्वारा सिखाया जाता है और इसे पवित्र माना जाता है।

हर देश के सम्बन्ध में तुम देखोगे कि जब वहाँ कोई नया विचार, कोई नयी व्यवस्था, कोई नयी खोज या आविष्कार अस्तित्व में आता है, तो पुरानी चीजों को तत्काल परित्याग नहीं किया जाता, बल्कि उसे पवित्रता के धर्म में संरक्षित कर लिया जाता था। (यथा), प्राचीन हिन्दू लोग ताड़पत्रों तथा भोजवृक्षों की छाल पर लेखन किया करते थे और जब कागज की खोज हुई, तो उन्होंने सारे ताड़पत्रों को फेंक नहीं डाला, बल्कि वे ताड़पत्रों तथा भोजपत्रों पर लिखना पवित्र मानने लगे। ऐसा ही यहूदी लोगों के साथ भी हुआ। पहले वे चर्मपत्र पर लिखा करते थे और अब उनके मन्दिरों में ही चर्मपत्र पर लिखा जाता है। इस प्रकार तुम देखते हो कि नयी प्रथाओं के आ जाने पर पुरानी प्रथाओं को पवित्र मान लिया जाता है। अत: वैदिक साहित्य को मौखिक पाठ के द्वारा हस्तान्तरित करने की यह प्रक्रिया, यद्यपि अति प्राचीन

और अब प्राय: निरुपयोगी हो जाने के बावजूद, पवित्र मान ली गयी है। इसके छात्र को अपने शिक्षक से मौखिक रूप में ही इसकी शिक्षा लेनी होगी, भले ही वह अपने पाठ को दुहराने के लिए ग्रन्थों का उपयोग कर सकता है। इसकी पवित्रता को अधिक युक्तिसंगत बनाने के लिए, ऐसे तथ्य के चारों ओर और भी अनेक रुपान्तरण होते जाएँगे, परन्तु नियम यही है।

ये वेद अपने आप में साहित्य का एक विशाल समूह हैं। तात्पर्य यह कि उस प्राचीन काल में, प्रत्येक देश में धर्म ही मनुष्य के हृदय से उद्‌भूत होनेवाला पहला आदर्श था, और मनुष्य को प्राप्त होनेवाला सारा जागतिक ज्ञान धर्म को हस्तान्तरित हो गया।

द्वितीयत:, जो लोग धार्मिक गतिविधियों में लगे रहते थे और जो परवर्ती काल में पुरोहित कहलाने लगे, वे हर देश के प्रारम्भिक चिन्तक होने के कारण केवल धार्मिक ही नहीं, बल्कि जागतिक विषयों पर भी विचार किया करते थे और इस प्रकार हर तरह का ज्ञान उन्हीं लोगों में सीमाबद्ध होकर रह जाता था। जागतिक तथा धार्मिक दोनों प्रकार की ज्ञान राशियों को सर्वदा एक साथ एकत्र करके एक विराट साहित्य का रूप दे दिया जाता था। काफी काल बाद भी ऐसा ही होता रहा। उदाहरण के लिए, यहूदी लोगों को बाइबिल का अध्ययन करते समय हमें यही बात देखने को मिलती है। उनका ताल्मुड (Talmud) ग्रन्थ सभी विषयों पर विशाल जानकारियों से परिपूर्ण है। पेंटाट्यूक (Pentateuch) ग्रन्थ में भी ऐसा ही हुआ है। इसी प्रकार, वेद भी विभिन्न विषयों पर सूचनाएँ देते हैं। उन सभी को मिलाकर एक ग्रन्थ का रूप दे दिया गया है। परवर्ती काल में जब अन्य विषयों को धर्म से अलग किया गया, जब खगोल तथा ज्योतिष शास्त्रों को धर्म से अलग किया गया, तो वेदों से सम्बद्ध तथा प्राचीन होने के कारण इन विषयों को अत्यन्त पवित्र माना गया।

वेदों का प्राय: अधिकांश भाग खो चुका है। जिन पुरोहितों पर इन्हें भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षित करने का भार था, वे लोग अनेक परिवारों में बँटे हुए थे; और उसी के अनुसार वेदों के विभिन्न अंश भी बँटे हुए थे। इनका प्रत्येक अंश किसी एक परिवार को सौंप दिया गया था। वेदों के उस नियत भाग से ही उस परिवार को पूजा, अनुष्ठान, उपासनाएँ तथा प्रथाएँ ग्रहण करनी पड़ती थीं। वे लोग उसका संरक्षण करते और उसी के अनुसार अपने सारे अनुष्ठान सम्पन्न करते। काल के प्रवाह में इनमें से कुछ परिवार विलुप्त हो गये; और यदि ये पुराने विवरण सत्य हों, तो उन लोगों के साथ ही वेदों के अंश भी खो गये ।

तुम लोगों में से किसी-किसी को यह विदित होगा कि वेदों को चार भागों में बाँटा गया है । एक को ऋग्वेद, दूसरे को यजुर्वेद, तीसरे को सामवेद और चौथे को अथर्ववेद कहा जाता है। फिर इनमें से प्रत्येक को अनेक शाखाओं में बाँटा गया है। उदाहरणार्थ, सामवेद की एक हजार शाखाएँ थीं, जिनमें से अब पाँच या छह बची हुई हैं; बाकी सभी खो चुकी हैं। ऐसा ही अन्य वेदों के साथ भी हुआ है। ऋग्वेद की एक सौ आठ शाखाएँ थीं, जिनमें से केवल एक ही बची है, बाकी सभी विलुप्त हो चुकी हैं।

इसके बाद हम विभिन्न आक्रमणों पर आते हैं। भारतवर्ष, जो अपनी धनाढ्यता के कारण सुप्रसिद्ध था, अत: जो कोई भी राष्ट्र सबल हो जाता, वह जाकर भारत पर विजय प्राप्त कर लेना चाहता था। प्राचीनतम इतिहास के ग्रन्थों में भी इस देश की सम्पदा एक किम्वदन्ती के रूप में वर्णित हुई है। धनवान होने की इच्छा से अनेक विदेशी आक्रान्ताओं ने भारत पर चढ़ाई की और इस देश पर विजय प्राप्त की। इनमें से प्रत्येक आक्रमण के फलस्वरूप अनेक मकान तथा ग्रन्थालय जला दिये गये और इनमें से एक या अनेक परिवारों का नाश हो गया। ऐसी ही परिस्थितियों में बहुत-सा साहित्य नष्ट हो गया। केवल पिछले कुछ वर्षों से ही इस विषय पर विचार शुरू हुआ है कि इन विभिन्न धर्मों तथा उनके ग्रन्थों का संरक्षण होना चाहिये। इसके पूर्व तक, मानवता को इन समस्त लूटपाट तथा विध्वंस की पीड़ा को सहना पड़ा है। कला के बेमिशाल नमूने सदा के लिए विलुप्त हो गये। वे अद्‌भुत भवन पूर्णत: नष्ट हो गये, जिनके अवशेषों के छोटे-मोटे टुकड़े अब भी भारत में विद्यमान हैं, जिन्हें देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे कितने अद्‌भुत रहे होंगे।

(भारत के इन आक्रान्ताओं में से अधिकांश का यह अन्धविश्वास था) कि जो लोग उनके सम्प्रदाय के नहीं हैं, उन्हें जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है। वे (अविश्वासी) लोग मरकर ऐसे स्थानों में जाएँगे जहाँ, निरन्तर अग्नि जल रही होगी और अपने जीवन काल में वे लोग केवल दास बनने या मारे जाने के ही योग्य हैं, उन्हें 'केवल सच्चे विश्वासियों' के गुलामों के रूप में ही जीवित रहने का

अधिकार है, परन्तु आजाद रहने का कदापि नहीं। इस प्रकार जब भारतवर्ष पर इन तरंगों का आक्रमण हुआ, तो सब कुछ डूब गया। ग्रन्थों, साहित्य तथा संस्कृति का पतन हो गया।

परन्तु उस जाति में एक तरह की ऐसी जीवनी-शक्ति है, जो मानवजाति के इतिहास में अतुलनीय है और यह जीवनी-शक्ति कदाचित् उनकी अप्रतिरोध-क्षमता (अहिंसा) से उद्‌भूत हुई है।

अप्रतिरोध ही महानतम शक्ति का परिचायक है। मृदुता और विनम्रता में महानतम शक्ति विद्यमान है। क्रियाशीलता की अपेक्षा सहनशीलता में महत्तर शक्ति विद्यमान है। दूसरों को चोट पहुँचाने की तुलना में अपने स्वयं के मानसिक आवेगों को वशीभूत करनें में अत्यधिक शक्ति की आवश्यकता होती है। अपनी समस्त कठिनाइयों, विपत्तियों तथा समृद्धियों के दौरान इस जाति का यही आदर्श-वाक्य रहा है। यही (जगत का एकमात्र ऐसा देश है), जो कभी अपने पड़ोसियों का गला काटने, अपनी सीमा के बाहर नहीं गया। यह एक बड़े गौरव की बात है। यह सोचकर मेरे मन में देशभक्ति का उन्मेष हो रहा है कि एक हिन्दू के रूप में जन्म लेकर मैं एक ऐसी एकमात्र जाति का वंशज हूँ, जो कभी किसी को चोट पहुँचाने (अपने देश से बाहर नहीं गयी) और जिनका मावन-जाति से सम्पर्क केवल दान करने, पवित्र बनाने, शिक्षा देने तथा ज्ञान से आलोकित करने के लिए ही हुआ था; उन्हें लूटने के लिए कभी नहीं हुआ।

जगत की तीन-चौथाई धन-सम्पदा भारत से निकली है और अब भी निकल रही है। (अति प्राचीन काल से ही) भारत का व्यवसाय-वाणिज्य विश्व-इतिहास की धुरी – प्रमुख केन्द्रबिन्दु बना रहा। जिस किसी राष्ट्र ने इस पर अधिकार जमाया, वही शक्तिशाली और सभ्य बन गया। यूनानी (ग्रीक) लोगों ने इसे प्राप्त किया और शक्तिशाली यूनानी बन गये। रोमन लोगों ने इसे प्राप्त किया और शक्तिशाली रोमन बन गये। यहाँ तक कि फोनेशियन लोगों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ था। रोम साम्राज्य के पतन के बाद जेनोस (Genoese) तथा वेनीशियन्स (Venetians) लोगों को यह प्राप्त हुआ। इसके बाद अरब जाति का उदय हुआ और उन्होंने वेनिस तथा भारत के बीच एक अवरोध खड़ा कर दिया। और (भारत) पहुँचने के लिए एक नया रास्ता ढूँढ़ने की स्पर्धा में अमेरिका की खोज हुई। अमेरिका को इसी प्रकार खोजा गया था और इसी कारण अमेरिका के आदि निवासियों को इण्डियन या 'इन्जून' (Injuns) कहा जाने लगा। यहाँ तक कि हालैंडवासियों (Dutch), बारबेरियनों ने भी इसे प्राप्त किया था। अंग्रेजों ने भी इसे प्राप्त किया और दुनियाँ के सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र बन गये। इसके बाद जो भी राष्ट्र इसे प्राप्त करेगा, वह तत्काल सर्वाधिक शक्तिशाली हो उठेगा।[१]

जरा सोचो कि हमारा राष्ट्र जिस प्रचण्ड ऊर्जा को प्रकट कर रहा है, वह उसे कहाँ से मिलती है? निस्सन्देह वे लोग भारत में उत्पादन करते हैं और तुम लोग (अमेरिका में) उपभोग करते हो। हर किसी के शासन तथा गुलामी के फलस्वरूप करोड़ों धैर्यशाली तथा परिश्रमी हिन्दू यह सब उत्पन्न करते रहे हैं। यहाँ तक कि भारत के करोड़ों लोगों पर अभिशाप की वर्षा करने वाले मिशनरी लोग भी इन्हीं करोड़ों लोगों के परिश्रम के फल से हृष्ट-पुष्ट हो रहे हैं; और वे यह भी नहीं जानते कि यह कैसे होता रहा है। जिस काल से ज्ञात इतिहास का प्रारम्भ होता है, तभी से विश्व-इतिहास उन्हीं के खून-पसीने पर गतिमान होता रहा है और आनेवाले हजारों साल तक ऐसा ही होता रहेगा। इसका लाभ क्या है? यह उस राष्ट्र को शक्ति देता है। हिन्दू जाति मानो एक उदाहरण है। उन्हें यह सब कुछ सहते हुए कष्ट उठाना पड़ेगा और धार्मिक सत्यों के ज्योतिस्तम्भ को प्रज्वलित रखने के लिए संघर्ष करते रहना होगा, मानव-जाति को यह शिक्षा देने के लिए कि अप्रतिरोध (अहिंसा) अति उच्चतर आदर्श है, कष्ट सहना अति उच्च आदर्श है; यहाँ तक कि उनके आक्रान्ता भी इस बात को स्वीकार करेंगे कि अगर 'जीवित रहना' ही लक्ष्य हो, तो वह (हिन्दू) एक ऐसी जाति है, जिसे 'अमर कहा जा सकता है, जिसका कभी नाश नहीं किया जा सकता है।'

वे यूनानी लोग आज कहाँ हैं, जिनकी सेनाओं ने सारे विश्व में अपना विजय अभियान चला रखा था? लुप्त हो गये, कोई नहीं जानता कि हजारों साल पहले कहाँ चले गये। ज्यों ही उत्तर से बारबेरियन लोगों ने आकर उन पर आक्रमण किया, वे लोग गायब हो गये। वे प्रबल रोमन लोग आज कहाँ हैं, जिनकी टोलियों ने आकर धरती को कुचल डाला था? आज वे लोग कहाँ हैं? चले गये, सुबह

१. द्वितीय विश्व युद्ध (१९३९-४५) के दौरान इंग्लैंड की बहुत सारी सम्पदा अमेरिका को हस्तान्तरित हो गयी थी और तब से वह दुनिया का सबसे सशक्त राष्ट्र बना हुआ है।

की ओस कणों के समान लुप्त हो गये और सभ्यता के अभियान में पीछे छूट गये।

परन्तु दूसरी ओर तीस करोड़ हिन्दू हैं, जरा उस जाति की उर्वरता पर विचार करो! पूरी दुनिया उनका जितनी संख्या में विनाश कर सकती है, वे उससे भी अधिक संख्या में बढ़ सकते हैं। यही इस जाति की जीवनी-शक्ति है। वैसे इन बातों का हमारे विषय से ज्यादा सम्बन्ध नहीं है, तो भी मैं तुम्हारे समक्ष इन्हें प्रस्तुत करना चाहता था।

सामान्यत:, अशिक्षित लोगों का मन, हर बड़े नगर के गवाँर जनसमूह के समान ही हर राष्ट्र के असभ्य लोगों का मन किसी भी सूक्ष्म क्रिया को न देख सकता है, न समझ सकता है और न उसकी धारणा ही कर सकता है। हमारे इस संसार की वास्तविक गतिविधियाँ अपने 'कारण' रूप में अत्यन्त सूक्ष्म हैं; केवल उनके कार्य ही स्थूल तथा दृश्यमान हैं। हमारे इस शरीर के पीछे, उसके वास्तविक कारण के रूप में हमारा मन तथा उसकी सूक्ष्म गतिविधियाँ विद्यमान हैं। यह शरीर स्थूल तथा बाह्य है, अत: सभी लोग शरीर को ही देखते हैं; अति अल्प लोग ही मन को देख पाते हैं। ऐसा ही हर चीज के विषय में है – प्रत्येक राष्ट्र का असभ्य, अज्ञानी जनसमूह एक विजयी जुलूस के अन्दर, प्रदर्शित हो रहे घोड़ों, हथियारों तथा तोपों की कतारें देखता है और समझ लेता है, परन्तु इस सबके पीछे जो सूक्ष्म तथा शान्त क्रियाएँ चल रही हैं, उन्हें केवल दार्शनिक या अत्यन्त सभ्य मनुष्य ही समझ सकता है।

अब हम पुन: वेदान्त की ओर लौटते हैं, जैसा कि मैंने कहा था कि वेदों की संस्कृत भाषा उस संस्कृत से भिन्न है, जिसमें उनकी रचना के करीब हजार वर्ष बाद के उन कवियों तथा अन्य उत्कृष्ट लेखकों की रचनाएँ निबद्ध हैं, जिनके ग्रन्थों का अनुवाद तुम्हें पढ़ने को मिलता है। वेदों की संस्कृत भाषा अत्यन्त सरल तथा रचना-शैली प्राचीन थी और सम्भवत: यह एक बोलचाल की भाषा थी। परन्तु आज हमें जो संस्कृत प्राप्त है, वह कम-से-कम पिछले तीन हजार वर्षों के दौरान कभी बोलचाल की भाषा नहीं रही है। बड़े ही विस्मय की बात है कि जो भाषा मर चुकी थी, उसी में तीन हजार वर्षों तक विशाल आकार में साहित्य की रचना होती रही। इस मृत भाषा में ही नाटकों तथा कथाओं की रचना होती रही। इस पूरे काल खण्ड के दौरान यह घरों में बोलचाल की भाषा न रहकर केवल विद्वानों तक सीमित रही।

यहाँ तक कि ईसा के जन्म के ५६० वर्ष पूर्व बुद्ध के काल में भी बोलचाल की भाषा के रूप में संस्कृत का उपयोग बन्द हो चुका था। उनके कुछ शिष्य संस्कृत भाषा में शिक्षा देना चाहते थे, परन्तु उन्होंने साफ शब्दों में मना कर दिया। उन्होंने बताया कि वे आम जनता के शिक्षक हैं, अत: वे लोकभाषा में उपदेश देना चाहते हैं। इस प्रकार बौद्ध साहित्य उस पाली भाषा में लिखा गया, जो तत्कालीन बोलचाल की भाषा थी।

यह विशालकाय वैदिक साहित्य हमें तीन समूहों में प्राप्त होता है। 'संहिता' नामक पहला समूह सूक्तों अर्थात् स्तुतियों का संकलन है। 'ब्राह्मण' नामक दूसरा समूह यज्ञों से सम्बन्धित है। ... और तीसरा समूह उपनिषद कहलाता है। इसके प्रथम दो भाग – स्तुतियाँ तथा अनुष्ठान पद्धतियाँ एकत्र रूप से 'कर्मकाण्ड' कहलाती हैं; और दूसरा उपनिषद अर्थात् 'ज्ञानकाण्ड' कहलाता है। यह वही शब्द है, जिसे तुम्हारे अंग्रेजी में 'नॉलेज' (Knowledge) और यूनानी भाषा में 'ग्नॉस' (Gnos) कहा जाता है। इसी प्रकार तुम्हारे 'एग्नॉ स्टिक' (Agnostic) आदि शब्द बने हैं।

पहले अंग में अग्नि, मित्र (सूर्य) आदि कुछ देवताओं की स्तुतियों का संकलन है। उन देवताओं की स्तुतियाँ की जाती हैं और उन्हें आहुतियाँ दी जाती हैं। मैंने तुम्हें बताया कि ये देवताओं की स्तुतियाँ हैं। चूँकि तुम लोग संस्कृत के 'देव' शब्द से परिचित नहीं हो, इसीलिए मैंने 'गॉड्स' (gods) शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि यह शब्द बड़ा भ्रामक है। देव शब्द का अर्थ है 'प्रकाशमान' या 'दीप्तिमान', और भारत में देव शब्द व्यक्तियों की अपेक्षा पदों का परिचायक है। उदाहरणार्थ, इन्द्र तथा अग्नि किन्ही व्यक्तियों के नाम नहीं, अपितु इस ब्रह्माण्ड के विशिष्ट पदों के द्योतक हैं। जैसे कि अध्यक्ष का पद है – कोई विशिष्ट तत्त्वों पर अध्यक्षता करता है, कोई कुछ लोकों पर अध्यक्षता करता है, आदि आदि। इन धर्मशास्त्रियों के मतानुसार तुम और मैं अर्थात् हममें से अधिकांश लोग सम्भवत: कई बार इनमें से कुछ देवताओं का पद सँभाल चुके हैं। कोई भी जीव केवल अस्थायी रूप से ही इनमें से किसी एक (जैसा कि अग्नि के) पद पर आसीन हो सकता है। और जब उसका कार्यकाल पूरा हो जाता है, तो इस संसार से किसी पुण्यात्मा को उठाकर उस पद पर आसीन करा दिया जाता है और वह अग्नि (देवता)

शेष भाग पृष्ठ ९० पर

सारगाछी की स्मृतियाँ (१००)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

०७-०३-१९६४

वि. बाबू बहरमपुर में रहते हैं। एक समय उनकी जमींदारी थी, वे उच्चशिक्षित हैं। अच्छे धनवान हैं। जब प्रेमेश महाराज पहली बार सारगाछी गए, तब वि. बाबू उनके प्रति आकृष्ट हुए थे और सपरिवार दीक्षा लेकर सारगाछी आश्रम के एक अन्तरंग हितैषी बन गए।

कल सन्ध्या के समय वि. बाबू बहुत दूर से आए। बहुत आग्रह कर रहे हैं। महाराज ने बड़े स्नेह से दो-चार बातें करके उन्हें चले जाने को कहा, किन्तु वे लोग अभी भी बैठे हैं।

बाद में बातचीत के प्रसंग में महाराज ने कहा, 'उन लोगों के साथ मैं बिलकुल पिता की तरह घुल-मिल गया हूँ, किन्तु वे लोग समझ ही नहीं सकते कि मैं संन्यासी हूँ। बीच में एक नहर है और उसके दोनों ओर हम दोनों लोग हैं। इसके अलावा उनके साथ स्त्री है, मैं उन्हें घर में रहने को कैसे अनुमति दूँ?

गीता का 'सखेति मत्वा...' पाठ हो रहा है।

महाराज – हाय ! हाय ! माँ (श्रीश्रीमाँ) के घर जाकर नाच-गाकर पेड़ से लगकर हो-हो किया है – एकदम मूर्ख (गधा) था। माँ के समाने चुपचाप बैठे रहना उचित था। माँ तो अनन्त काल से हैं, मैं भी तो अनन्त काल से हूँ। किन्तु पूर्व में इस बार की तरह प्रकट रूप तो नहीं था। उनके पास चुपचाप बैठे रहना उचित था, कैसा बकवास करके घूम रहा हूँ।

महाराज – अधिक पुस्तकें साथ रहने से जिम्मेदारी है। ट्रेनिंग सेन्टर में मानो कोई पुस्तकें ले लेगा ! और जगह नहीं मिली तो। ट्रेनिंग सेन्टर की जलवायु ऋषिकेश की जलवायु होगी। वहाँ भगवान के भाव को छोड़कर बाहर का संसार नहीं रहेगा।

माँ के एक शिष्य को एक व्यक्ति ने एक गाड़ी उपहार में दिया है। महाराज ने ऐसा सुनकर कहा, ''माँ का पुत्र है, माँ उसका शौक पूरा कर दे रही हैं। किन्तु महापुरुष महाराज ने गिरीश-ग्रन्थावली का स्वत्वाधिकार (कॉपीराइट) बिलकुल ही नहीं लिया। भोग की वस्तुएँ नहीं लेते। क्या करेगा, कोई ऐसा मित्र ही नहीं है, जो आमने-सामने बिल्कुल स्पष्ट रूप से भूल समझाकर बता दे, सभी केवल काना-फूसी करनेवाले हैं।''

एक भक्त से (एकान्त में) देखो, वह पत्नी के वशीभूत नहीं है, अच्छा ही है। मोह नहीं होगा, अधिक बच्चे नहीं होंगे। देखो, आजकल नवयुवक विवाह नहीं करना चाहते हैं। कैसा आश्चर्य है, पहले तो यह बात सोची ही नहीं जाती थी।

०८-०३-१९६४

कल शाम को वि. बाबू के नहीं आने पर महाराज ने एक व्यक्ति को उनकी खोज-खबर लेने भेजा कि कहीं वे नाराज न हों। अभी हाल में ही संघ में सम्मिलित एक ब्रह्मचारी के बारे में महाराज ने कहा, ''उस युवक में कर्मठता कम है, कितना ढीला-ढाला है, लगता है वह कुछ रस (आनन्द) नहीं पा रहा है।''

प्रात: ७ बजे टहलते हुए – एक व्यक्ति आकर बता गए कि गुप्त प्रेस के मतानुसार आज शिवरात्रि है।

महाराज – यहाँ जिससे भी भेंट होती है, वह कहता है – आज अमुक-अमुक आएँगे और आज अमुक तिथि है। अर्थात् भीतर सब खाली है, सामान्य नई चीजें पाकर ही जीवित हैं, उसी को लेकर मतवाले हैं। इससे ही स्वामीजी की स्वाधीनता को समझो। कल रा. ने सि. महाराज के यहाँ भंडारे की बात जो कही थी – कितना अपव्यय, अच्छी तैयारी नहीं, परोसनेवाले लोग नहीं, सुव्यवस्था का अभाव, फिर दक्षिणा एक रुपया और रिक्शा खर्च चार आना, वे खूब अच्छे साधु हैं, लाटू महाराज की सेवा की है। मैं कहता हूँ न, चन्दन की लकड़ी भी बिना खरादे किसी काम में नहीं आती।

सेवा करते समय दोनों पक्षों का सहयोग नहीं मिलने पर, वह केवल आर्तनारायण सेवा होकर रह जाती है, वह सेवा अधिक दिनों तक नहीं चलाई जा सकती है।

कल तुम लोगों ने ठाकुर को नीचे उतारकर मनुष्य के समान व्यवहार की बात कही थी। मैं बात नहीं कर सकता था, बड़ा कष्ट हुआ था। मैं सब जानता हूँ, तुम लोगों को समझा सकता था। उस युवक के मन में जिज्ञासा है – 'वरणभेदस्तु... क्षेत्रिकवत्' – थोड़ा कुरेदने से ही समझ जाता है। कल उसने एक बड़ी बात कही थी, कहा था – आपने तालाब खोद दिया है, जहाँ से भी हो, उसमें जल जाएगा। उस नवयुवक में बड़ी सम्भावना छिपी है।

१३-०४-१९६४

महाराज – 'मदर्थं कर्म' – आजकल व्रत-उपवास अप्रासंगिक हो गए हैं। इस समय नारायण-ज्ञान से सेवा ही सर्वोत्तम वस्तु है, इससे समष्टि और व्यष्टि दोनों की ही उन्नति है। देश की दुरवस्था, लोगों का तमोभाव, हृदय की अनुदारता एवं वेदान्त की सार्वजनीन ग्रहणशीलता का अभाव देखकर ही स्वामीजी ने इस प्रकार के वेदान्त का प्रचार किया है।

मनुष्य कर्मशीलता से (कार्य करके ही) व्यक्त होता है। अनादि ने विरजा स्वामी के कार्यों की बात बताई थी – ठीक मानो चित्र की तरह सुस्पष्ट। सब्जी के छिल्कों को भी बड़े यत्न से फेंकते थे। फलों के खोल को दर्शनीय ढंग से सजाकर रखते – 'वमनपि मधुरम्।' इन सब बातों को छापकर प्रचार करना अच्छा है। इसे ट्रेनिंग सेन्टर की पाठ्य सामग्री होनी चाहिए। देखो न ... काम तो सभी करते हैं। ध्रु. का कार्य धीरे-धीरे किन्तु त्रुटिहीन होगा।

महाराज के शरीर की ऐसी अवस्था होने पर भी एक दिन उन्होंने सेवक के अनुरोध पर कष्ट करके ध्रु. को एक पोस्टकार्ड लिखा। सेवक ने ध्रु. को सम्बोधित वह पत्र उन्हें लाकर दिया। वह पत्र सेवक द्वारा दिये जाने पर महाराज ने उसे हाथ में लेकर दो टुकड़े करके फेंक दिया।

महाराज – पत्रावली एक रीति हो गई है। खोका महाराज की पत्रावली को निकालकर मुझे उसकी भूमिका लिखने को कहा। मैंने तो दिया नहीं, निर्मल महाराज (स्वामी माधवानन्द) के पास भेजा। पता चला कि वे (खोका महाराज) तो साहित्य-फाहित्य पसन्द करते ही नहीं। उनका सरल बालकवत् अनाडम्बरपूर्ण जीवन का माधुर्य समझने लायक है, छोटी-छोटी घटनाओं के सन्निवेश से ही उनका चित्र अच्छी तरह प्रकट होगा।

महाराज – (एक त्यागव्रती से) तुम वर्षों से जो सुन रहे हो, तुम्हारे लिये ही बचा है, किसी अन्य को उसका सुअवसर नहीं मिला। इतना ब्रह्म-ब्रह्म कोई नहीं सुनता। तत्त्व को ही जानना आवश्यक है, उसे जान लेने से पतन होने पर ऊपर उठ सकोगे।

गाइडबुक हाथ में है। इससे भी यदि नहीं होता है, तो घर जाकर विवाह कर लो। तुम्हारे द्वारा नहीं होने का कारण है कि तुम समय नहीं पाते। सुस्थिर होकर बैठ सकने से सब ठीक हो जाएगा। छह महीने में नारायण के आ जाने पर तुम्हें समय दे सकता था, उसे भी कुछ सुनने को मिलता। माँ की कृपा से मैं जिसको भी जो कहता हूँ, उसके काम आता है। मैं तो स्वार्थ-बुद्धि से नहीं कहता, ठाकुर की बातें ही कहता हूँ।

साधुओं का दो प्रकार का चेहरा होता है – किसी के मुख पर सफलता की तृप्ति का भाव और किसी के मुख पर प्रसन्नता रहती है। बुद्ध महाराज में तृप्ति और प्रसन्नता दोनों ही है। उपेन के मुख पर तृप्ति का भाव है। योगी महाराज के भीतर प्रसन्नता है। दूसरे प्रकार के लोग हैं – 'श्रुत्वाऽन्येभ्य:' मेरे पूर्वाश्रम की माँ ठीक समय पर माला-जप करती थीं, खूब निष्ठावान थीं, अन्तत: ठाकुर को मानकर भोगराग तक समर्पित करती थीं। गोविन्दजी के पास ही ठाकुर को बैठाया था।

अन्तर्मुख अवस्था में भी महाराज को अपने प्रिय पात्र र. महाराज के लिये कैसी व्याकुलता थी ! इसे उन्हें लिखित २१-३-१९६४ के पत्र से समझा जा सकता है –

श्रीरामकृष्ण:

प्रिय विष्णु,

वाराणसी

२१-०३-६४

तुम शारीरिक रूप से स्वस्थ हो, यह जानकर आनन्द हुआ। यदि Head, Heart and Hand ठाकुर की ओर अग्रसर हो जाएँ एवं प्राणशक्ति की सहायता से nerves of steel and museles of iron द्वारा मन को बीच-बीच में बन्द करने का आभ्यास करो, तो उससे तुम्हारे हृदय में

शेष भाग पृष्ठ ९० पर

जीवन में परिवर्तन हेतु ग्रन्थों-शिक्षकों का सम्मान एवं विवेकानन्द का अध्ययन करें

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

एक बार एक महिला स्वामी प्रभानन्द जी महाराज के पास आई और निवेदन की कि रामकृष्ण मिशन से प्रकाशित एक नई पुस्तक पर वे हस्ताक्षर करें। महाराज ने उस पुस्तक पर हस्ताक्षर कर दिया। महाराज ने उसे पुस्तक देते हुए पूछा – क्या तुम इस पुस्तक को पढ़ोगी? तो उसने कहा – नहीं, महाराज ! मैं पुस्तकों को खरीदती हूँ और किसी विशिष्ट व्यक्ति से हस्ताक्षर करवाकर, उसे अपनी अलमारी में सजाकर रखती हूँ। ऐसी बहुत-सी पुस्तकें मेरी अलमारी में हैं। यह कहकर वह महिला मुस्कराते हुए चली गयी। महाराज को थोड़ा असंतुष्ट देखकर पास खड़े एक संन्यासी ने पूछा – महाराज ! हस्ताक्षर करवाने से उन पुस्तकों का ऐतिहासिक महत्त्व हो सकता है क्या? तब महाराज ने उत्तर देते हुए कहा – 'पुस्तक का मूल उद्देश्य तो उसका अध्ययन कर अपने जीवन को गढ़ना होता है, अपने जीवन का विकास करना होता है। यदि ऐसी लाखों पुस्तकें हस्ताक्षर करवाकर रखी जाएँ, तो उनका मूल उद्देश्य पूरा नहीं होता। व्यक्ति के पास ऐसी अमूल्य ज्ञान की धरोहर वाली पुस्तकें होते हुए भी वह सारा जीवन अज्ञानी ही रह जाएगा। यह आजकल का नया फैशन बन गया है। बड़ा दुख का विषय है कि लोग पुस्तकें रखने और दिखाने के लिए खरीदते हैं, अध्ययन के लिए नहीं।'

सचमुच यह एक बहुत बड़ी विडम्बना है कि हमारे पास अनमोल ग्रन्थ होते हैं, पर हम उन्हें लाल कपड़ों में बाँधकर उसकी पूजा करते हैं; पर कभी खोलकर उन अनमोल रत्नों को प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते। इस प्रकार लाल कपड़े में बाँधकर ग्रंथों को रखने से या पुस्तकों को सजाकर रखने से उनका सम्मान नहीं होता। वह मात्र एक प्रदर्शन बनकर रह जाता है, जिसे हम दूसरों को दिखाने के लिए करते हैं कि मेरे पास इतनी पुस्तके हैं। पर जब तक हम उन पुस्तकों को पढ़कर अपने जीवन का विकास नहीं करते, तब तक उन पुस्तकों का यथार्थ सम्मान नहीं होता। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि पुस्तकों का अपमान या ग्रंथों का अपमान करना दुष्कृत्य है, पर उसे मात्र सजाकर रखना भी बुद्धिमानी का कार्य नहीं है। स्वामी विवेकानन्द जी भी यही कहते हैं, 'सारी शिक्षा का ध्येय है मनुष्य का विकास।'[१]

शिक्षा के लिए समर्पण की भावना

देवता युद्ध में जिन असुरों को मार देते, उन्हें शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या से जीवित कर देते। इससे देवताओं की संख्या दिनों-दिन कम होने लगी। बहुत सोच-विचार के बाद शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या सीखने की बात तय हुई। लेकिन असुरों के बीच रहकर सीखने की हिम्मत कौन करे! अन्ततः कच ने यह साहस किया और वह शुक्राचार्यजी के पास जाकर विद्या ग्रहण करने लगा। वहाँ उसे असुर सहपाठियों के घोर विरोध का सामना करना पड़ा। कई बार उसे बड़े कष्ट देकर मार डाला गया, लेकिन शुक्राचार्यजी संजीवनी विद्या से उसे जीवित कर दिया करते। सब तरह के कष्ट सहकर भी कच ने हिम्मत नहीं हारी और अपनी शिक्षा पूर्ण करके संजीवनी विद्या प्राप्त की। शिक्षा प्राप्ति के लिए समर्पण की भावना का यह अनुपम उदाहरण है।

वर्तमान समय में विद्यार्थी अपने अभिभावकों से सुविधाओं की माँगें करते हैं। कुछ चीजें आवश्यक हो सकती हैं, पर उनमें से अधिकांश माँगें विलासितापूर्ण होती हैं। जैसे वे बिना मोबाइल के विद्यालय नहीं जाना चाहते, बिना मोटरसाईकिल के महाविद्यालय नहीं जाना चाहते, आदि आदि। वस्त्रों का

साफ-सुथरा होना विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त है, परन्तु उन्हें कीमती से कीमती वस्त्रों की माँग होती है। कभी-कभी यह माँगें अभिभावकों की क्षमताओं से परे चली जाती हैं; यह अत्यन्त दुख का विषय होता है। तब बाध्य होकर माता-पिता को स्वयं की आवश्यक वस्तुओं में कटौती करके अपनी संतान की विलासिता को पूर्ण करना पड़ता है। विद्यार्थी में विद्या-प्राप्ति के प्रति समर्पण का भाव होना चाहिए। यद्यपि वास्तविकता तो यह है कि विलासिता में रहकर विद्या पूर्ण कर पाना कठिन कार्य है। विलासिता में रहने से आलस्य का भाव आता है। वहीं तपस्या के भाव से विद्या ग्रहण करने में गम्भीरता आती है, और तभी वह ज्ञान का अधिकारी बन पाता है।

नैतिक और धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता

अभिभावक अपनी संतानों के पथ-प्रदर्शक होते हैं। वे जैसा बच्चों को सिखाते हैं, बच्चे वैसा ही सीखते हैं। अभिभावकों को सदा अपनी संतानों में ज्ञानप्राप्ति के लिए समर्पण की भावना को प्रोत्साहित करना चाहिए। यदि अभिभावक उन्हें मात्र रोजगारोन्मुखी शिक्षा देने का प्रयास करेंगे, तो उनमें नैतिक शिक्षा का अभाव हो जाएगा। जो स्वयं उनकी सन्तानों के लिए, अभिभावकों के लिए, समाज तथा राष्ट्र के लिए अहितकर है। नैतिक शिक्षा और पाठ्यक्रम की शिक्षा दोनों का संतुलन अत्यन्त आवश्यक होता है। वेद कहते हैं – **द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च।** ब्रह्म को जाननेवाले इस प्रकार दृढ़ता से कहते आए हैं कि दो विद्याएँ ही जानने योग्य हैं – एक परा (ब्रह्म विद्या) और दूसरी अपरा (जगत सम्बन्धी विद्या, जैसे शिक्षा, व्याकरण आदि)।[२]

कुछ अभिभावक ऐसा सोचते हैं कि वे पाठ्यक्रम को अच्छे से पढ़ाकर, बच्चों को अच्छे अंकों से उत्तीर्ण करके, उनका जीवन सफल बना लेंगे। परन्तु यदि नैतिक शिक्षा न रहे, तो वे आर्थिक रूप से सुदृढ़ होने पर भी अशान्ति के शिकार हो जाते हैं और पूरे परिवार में अशान्ति छा जाती है। कुछ लोगों की ऐसी धारणा होती है कि धर्म की शिक्षा वृद्धावस्था के लिए होती है, परन्तु धर्म की शिक्षा यदि वृद्धावस्था में मिली, तो फिर उसे जीवन में पालन करने का समय ही कहाँ मिलेगा।

एक बार एक विद्यार्थी पाँचवीं कक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुआ। उसके पिता ने यह बात एक संन्यासी से कही। संन्यासी ने उसे परामर्श दिया कि वह अपने पुत्र को आश्रम के विद्यालय में प्रवेश दिलवा दे, जिससे उसे अच्छी भौतिक और नैतिक शिक्षा मिले। उसके पिता ने कहा – ''महाराज ! आश्रम के पीछे एक अंग्रेजी माध्यम का विद्यालय है। मैं उस विद्यालय में ही उसका प्रवेश करवाऊँगा, क्योंकि उस विद्यालय के परीक्षा परिणाम आपके विद्यालय से अधिक अच्छे होते हैं।'' संन्यासी ने उस व्यक्ति को सचेत करते हुए कहा कि आप सही कहते हैं कि उस विद्यालय के परीक्षा परिणाम अच्छे होते हैं, परन्तु उस विद्यालय में संस्कार नहीं दिए जाते, बल्कि उन्हें नास्तिक बना दिया जाता है। उनके परिधानों में शालीनता नहीं झलकती। अत: आप सावधान रहें ! पर उस व्यक्ति ने संन्यासी की एक न सुनी। इस प्रकार वह विद्यार्थी पढ़ने लगा और प्रत्येक वर्ष उसके परीक्षा परिणाम बहुत अच्छे आने लगे। प्रत्येक वर्ष वह व्यक्ति मिठाई का डिब्बा लेकर उस संन्यासी के पास जाता और उनसे कहता, महाराज ! यदि वह आपके विद्यालय में पढ़ता, तो इतने अच्छे परिणाम नहीं आते। वर्ष बीतने लगे। मिठाई लाकर संन्यासी को ताने मारने का सिलसिला यूँ ही चलता रहा। अब वह विद्यार्थी इंजीनियरिंग और एमबीए करके एक अच्छी नौकरी करने लगा। एक दिन उसने अपने पिता से कहा कि आपकी सम्पत्ति अब आप मेरे नाम में कर दीजिए और आप निश्चिन्त होकर रहें। पिता ने भी वैसा ही किया। कुछ महीनों के पश्चात् लड़का एक हाफ पैंट पहनी हुई लड़की को लेकर घर आया और अपने माता-पिता से कहा कि यह आपकी बहू है। माता-पिता के सिर पर जैसे वज्रपात हो गया। पर वे कुछ न कह सके। बहू नास्तिक थी, इसलिये सास-बहू के बीच सदैव झगड़ा होने लगा। एक दिन उसके लड़के ने अपने माता-पिता से कह दिया कि आप लोग अब बूढ़े हो गए हैं, आधुनिक समाज की स्थिति से अवगत नहीं हैं; अत: अब यही बेहतर होगा कि आप लोग वृद्धाश्रम चले जाएँ। अब उनकी स्थिति एक भिखारी की तरह हो गई थी। तब वह व्यक्ति आश्रम जाकर उस संन्यासी से बोला, महाराज ! काश ! मैंने अपने पुत्र को आश्रम के विद्यालय में पढ़ाया होता, तो उसे पाठ्यक्रम के साथ नैतिक शिक्षा भी मिली होती। वास्तव में नैतिक शिक्षा की उपेक्षा करके आज वे स्वयं अपने चक्रव्यूह में फँस चुके थे। पर अब बहुत देर हो चुकी थी।

अत: अभिभावकों से हमारा विनम्र अनुरोध है कि वे

अपने बच्चों को पाठ्यक्रम की शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा और आध्यात्मिक शिक्षा से परिपूर्ण करें, जिससे वे शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें। उसी शिक्षा को शिक्षा कहा जा सकता है, जिससे मानव का विकास हो। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, 'धर्म वह वस्तु है, जिससे पशु मनुष्य तक और मनुष्य परमात्मा तक उठ सकता है।'[३]

विवेकानन्द साहित्य का अध्ययन

वर्तमान युग में स्वामी विवेकानन्द एक प्रेरणा स्रोत हैं। उनके साहित्य का अध्ययन करके कई महापुरुषों ने प्रेरणा पायी है। जिस प्रकार एक दीपक से दूसरे दीपक को जलाया जाता है, उसी प्रकार विवेकानन्द साहित्य का अध्ययन कर विवेकानन्द-रूपी दीपक ने अन्य महापुरुष-रूपी दीपकों को प्रज्वलित किया है। इनमें से कुछ महापुरुषों की आत्मकथा इतिहास के स्वर्णिम पन्नों में अंकित हैं। जैसे –

सुभाष चन्द्र बोस – 'मेरे एक सम्बन्धी (सुहृद चन्द्र मित्र), जो हमारे शहर में नए-नए आए थे, हमारे बगल के ही मकान में निवास करते थे। एक दिन मुझे (किसी कार्यवश) उनके घर जाना पड़ा। उनकी पुस्तकों में मेरी दृष्टि स्वामी विवेकानन्द के वाङ्मय पर पड़ी। मैंने उसके कुछ ही पन्ने पलटे होंगे कि मुझे अनुभव होने लगा कि यही तो है वह चीज, जिसकी खोज मैं व्याकुलता से कर रहा था। मैंने उनसे वे पुस्तकें माँग ली, उन्हें घर ले आया और पढ़ने में जुट गया। उनका संदेश मेरी अन्तरात्मा में गहराई से प्रवेश करता गया। मेरे प्राध्यापक ने पहले से ही मुझमें सौंदर्यानुभूति तथा नैतिक भावना को जाग्रत कर दिया था, जीवन में एक नवीन प्रेरणा दी थी, परन्तु वह मुझे कोई ऐसा आदर्श नहीं दे सके थे, जिसको मैं अपना सम्पूर्ण अस्तित्व समर्पित कर पाता; वह तो मुझे विवेकानन्द ने प्रदान किया। मैं उन पुस्तकों को दिन-पर-दिन सप्ताह-पर-सप्ताह और महीने-पर-महीने पढ़ता चला गया। मुझे सर्वाधिक प्रेरणा उनके पत्रों तथा व्याख्यानों से मिली। इस अध्ययन से मुझे उनके विचारों का सार ग्रहण करने में सफलता मिली। ... मैं उस समय मुश्किल से १५ वर्ष का था, जब विवेकानन्द ने मेरे जीवन में प्रवेश किया। इसके परिणामस्वरूप मेरे भीतर एक उथल-पुथल मच गई। एक क्रान्ति हो गई। स्वामीजी को समझने में तो मुझे काफी समय लगा, लेकिन कुछ बातों की छाप मेरे मन में शुरू से ही ऐसी पड़ी कि कभी मिटाये न मिट सकी। विवेकानन्द अपने चित्रों में और अपने उपदेशों के द्वारा मुझे एक पूर्ण विकसित व्यक्तित्व लगे। मैंने उनकी कृतियों में उन अनेक प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर पाए।... अब मैंने उस मार्ग का चयन कर लिया, जो मुझे विवेकानन्द ने दिखाया था।'[४]

सुभाष चन्द्र बोस

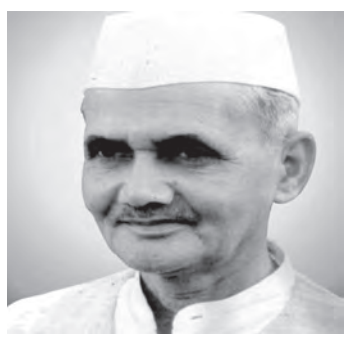
लाल बहादुर शास्त्री

महात्मा गाँधी

महात्मा गाँधी – 'मैं आज (६ फरवरी, १९२१ को) यहाँ (बेलुड़ मठ में) स्वामी विवेकानन्द के जन्म दिवस पर उनकी पुण्य स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित करने आया हूँ। मैंने स्वामीजी के ग्रन्थ बड़े ही मनोयोग के साथ पढ़े हैं और इसके फलस्वरूप देश के प्रति मेरा प्रेम हजारों-गुना बढ़ गया है। युवकों से मेरा अनुरोध है कि जिस स्थान पर स्वामी विवेकानन्द ने निवास और देहत्याग किया, वहाँ से कुछ प्रेरणा लिए बिना, खाली हाथ मत लौटना।'[५]

डॉ. जाकिर हुसैन

डॉ. जाकिर हुसैन – 'जब मैं पीछे मुड़कर अपने छात्र-जीवन की ओर देखता हूँ, तो मुझे स्पष्ट रूप से स्मरण आता है कि किस प्रकार इन महान संन्यासी (स्वामी विवेकानन्द) की कुछ रचनाओं का पठन मुझमें कैसी बिजली तड़का देता था !'[६]

लाल बहादुर शास्त्री – 'मुझे याद है कि मैंने अपने विद्यार्थी-जीवन में स्वामीजी के व्याख्यान पढ़े थे और उनके प्रति गहन आकर्षण का अनुभव किया था। उनके साहित्य ने मेरे मन पर इतना गहरा प्रभाव डाला कि मेरे सम्पूर्ण दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया और जीवन के विषय में मैं एक भिन्न धारणा रखने लगा।'[७]

इन्दिरा गाँधी – 'मेरा विशेष सौभाग्य रहा है कि जब मैं बहुत छोटी थी, तभी से मुझे स्वामी विवेकानन्द की रचनाओं, उपदेशों तथा जीवनी और रामकृष्ण मिशन से परिचित कराया गया।... स्वामीजी की ग्रन्थावली का प्रत्येक पृष्ठ और उनकी प्रत्येक उक्ति हमें प्रेरणा प्रदान करती है।'[८]

इन्दिरा गाँधी

नरेन्द्र मोदी – (अपने एक साक्षात्कार में कहते हैं) 'बचपन में मैं एक छोटे से गाँव में रहता था। वहाँ कोई गतिविधियाँ नहीं थीं। अत: समय कहाँ बिताएँ, तो पुस्तकालय चले जाते थे। मेरे गाँव में अच्छा पुस्तकालय था और वहाँ अच्छी किताबें थीं। वहाँ मुझे स्वामी विवेकानन्द जी को पढ़ने का अवसर मिलता था। और अधिकतर मुझे फिर उसी में मस्त रहने का आनन्द आने लग गया। मुझे ऐसा लगता है कि उनकी किताबों ने और उनके जीवन ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया है।'

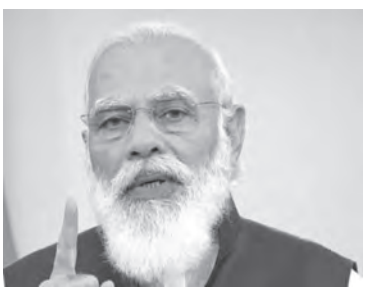
नरेन्द्र मोदी

देश में ही नहीं विदेशों में भी विवेकानन्द साहित्य का प्रभाव कई महापुरुषों पर पड़ा है, परन्तु स्थानाभाव के कारण हम यहाँ मात्र लियो टॉलस्टॉय का उल्लेख कर रहें हैं –

लियो टॉलस्टॉय – '१९०८ ईस्वी के ५ जून को टालस्टॉय ने मैकोवित्सकी से कहा – 'आज सुबह छ: बजे से ही मैं विवेकानन्द के बारे में सोच रहा हूँ। कल दिन भर विवेकानन्द के ग्रन्थ पढ़ता रहा।'

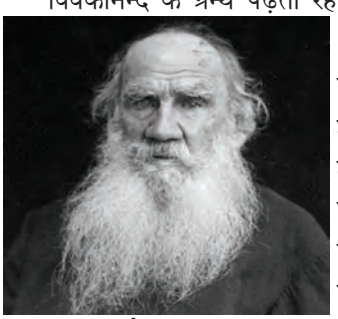
लियो टॉलस्टॉय

१९०८ ईस्वी के ५ जून को मैकोवित्सकी ने अपनी डायरी में लिखा – 'कल जब टॉलस्टॉय हॉल में आये, तो वे स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली के तीन खण्डों में से एक को हाथ में लिए हुए थे। उन्होंने कहा यह एक असाधारण ग्रन्थ है ! इसमें कितने ही विचार बारम्बार पढ़ने योग्य हैं।''[९]

उपसंहार

एक शिक्षिका कक्षा में प्रवेश करती है, तो देखती है कि फर्श पर कागज के टुकड़े पड़े हुए हैं। तब वह विद्यार्थियों को समझाते हुए कहती है कि इन कागजों के माध्यम से तुम लोग पढ़ाई करते हो, इसलिये सदैव उसमें सरस्वती का भाव रखना, सदा उसका सम्मान करना। यदि कोई कागज का टुकड़ा प्रयोग के योग्य न हो, तो उन टुकड़ों को सम्मानपूर्वक नष्ट करना, लेकिन वह कभी पैरों तले न आए, इसका ध्यान रखना। यही भारतीय संस्कृति की शिक्षा पद्धति है। ऐसे तो भारतीय संस्कृति के अनुसार प्रत्येक वस्तु में दिव्यत्व या ईश्वरत्व की उपस्थिति को स्वीकार किया जाता है, परन्तु उनमें विद्या के साधनों को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है, उसे सरस्वती मानकर पूजा जाता है। अत: हमें समस्त नैतिक पुस्तकों और समस्त धर्म-ग्रन्थों का सम्मान करना चाहिए। परन्तु इस प्रकार का सम्मान भी गौण है। उनका उचित सम्मान तो उन पुस्तकों का अध्ययन कर हमें अपने जीवन का विकास करना होता है; अपने चरित्र का गठन करना होता है।

अध्ययन स्वयं में परिवर्तन लाने का एक सुगम साधन है। अध्ययन हमें सत्पथ दिखाता है, हमारे द्वंद्वों को दूर करता है, हमारे जीवन की पहेलियों को सुलझाता है। अध्ययन का अभ्यास हमारे जीवन में एक अच्छे मित्र की भूमिका निभाता है। अज्ञान हमारे सारे दुखों का कारण है और अध्ययन उस अज्ञान को दूर करने में सहायता करता है। अध्ययन हमें विभिन्न मार्ग दिखाता है, जिस पर चलकर हम अपने दुखों का निवारण कर सकते हैं। पर अध्ययन में हमें भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक विषयों का सामंजस्य रखना चाहिए, जिससे हम प्रगति करें, जीवन का गठन कर सकें और अपने दिव्यत्व को भी प्राप्त कर सकें।

वेद हमें सत्य, धर्म और स्वाध्याय का उपदेश देते हुए उद्घोष करते हैं – **'सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमद:।'** अर्थात् सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। स्वाध्याय से प्रमाद न करो।[१०] ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. विवेकानन्द साहित्य ४/१७२ **२.** मुण्डक उपनिषद १/१/४ **३.** विवेकानन्द साहित्य १०/२१३ **४.** विवेकानन्द - मनीषियों की दृष्टि में, पृ. ५-६ **५.** वही, पृ. ५ **६.** वही, **७.** वही **८.** वही **९.** वही, २३-२४ **१०.** तैत्तिरीयोपनिषद्, प्रथम वल्ली ११ अनुवाक/१

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३८)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

कूँदघाटा – कटवा

कुँदघाटा के बाबू – महाप्रभु के पिता जगन्नाथ मिश्र के सम्बन्धी थे। उनके विशेष अनुरोध पर मुझे दो रात उनके घर पर निवास करना पड़ा। उनका हरिनाम-संकीर्तन तथा उद्दाम नृत्य देखकर मुझे अतिशय आनन्द हुआ था। वहाँ से केशव भारती का कुटीर देखने की इच्छा से मैं कटवा गया।

कटवा में जाकर मैं मुंसिफ गोविन्ददेव बाबू के घर में अतिथि हुआ। उन्होंने मुझे 'इंडियन मिरर' नामक समाचार-पत्र पढ़कर सुनाया कि खेतड़ी के राजा के कलकत्ते आने के कारण (उनसे मिलने हेतु) स्वामीजी दार्जिलिंग से वहाँ उतर आये हैं।

'केशव भारती का कुटीर' जैसा वहाँ कुछ भी नहीं है। तथापि मैंने वहाँ उनके एक छोटे-से समाधि-स्थान का दर्शन किया। कटवा के एक अत्यन्त वरिष्ठ विख्यात भागवत के अद्वितीय पण्डित का दर्शन करके एक रात मैंने उन्हीं के घर में निवास किया।

अगले दिन पता चला कि कटवा से मुर्शिदाबाद की दूरी छत्तीस मील है और मैं वहाँ से मुर्शिदाबाद के लिये रवाना हो गया।

मुर्शिदाबाद के पथ पर

रास्ते में मैंने अग्रद्वीप का मेला भी देखा। अग्रद्वीप में जिन सज्जन के घर मैं अतिथि हुआ था, उन्हीं के यहाँ मेरा हरिनाथपुर-निवासी पण्डित गंगाशंकर विद्यासागर महाशय के साथ विशेष परिचय हुआ। उन्होंने कहा कि मुर्शिदाबाद के मार्ग में ही उनका गाँव है। कुछ दिनों से वहाँ एक उत्तर-भारतीय साधु भी ठहरे हुए हैं। उन्होंने मुझसे विशेष अनुरोध किया कि मैं वहाँ एक-दो रात अवश्य बिताऊँ।

अग्रद्वीप में होनेवाले गोपीनाथजी के मेले का, चैतन्य-भागवत आदि ग्रन्थों में विस्तृत वर्णन है। दो रात अग्रद्वीप में बिताने के बाद मैं मुर्शिदाबाद की ओर चल पड़ा।

यहाँ से मार्ग में चलते-चलते मेरी चरवाहे-बालकों के साथ भेंट होती। वे लोग अत्यन्त दुर्बल थे। अकाल के कारण ही उनकी यह हालत थी। उन्हीं के मुख से मुझे पहली बार दुर्भिक्ष की बात सुनने को मिली। मठ में रहते समय मुझे बंगाल में पड़े हुए इस अकाल के विषय में कोई सूचना नहीं मिली थी। अपने बचे हुए पैसों में से एक-दो पैसे मैं रास्ते में मिलनेवाले चरवाहे बच्चों को दे देता।

मार्ग में मैंने जुड़ोनपुकुर के कालीबाड़ी में एक रात निवास किया। वहाँ एक विशाल वटवृक्ष के नीचे माँ का स्थान है। वहाँ कोई-न-कोई तांत्रिक साधक निवास करता है। माँ के बहुत-से गाय-बछड़े भी हैं। सुना, सेवा की भी कुछ व्यवस्था है।

कालीगंज थाने के निकट आने पर मुझे दूर से एक तम्बू दिखा। पूछने से पता चला कि कृष्णनगर से एक अंग्रेज सर्किल-आफीसर वहाँ आकर गाँव-गाँव में दुर्भिक्ष-पीड़ितों को चावल बाँट रहे हैं। यह सुनकर मेरे मन में उनसे मिलने की बड़ी इच्छा हुई। थाने के सामने से जाते हुए मैंने देखा, थाने के खुले झोपड़े में से एक छोकरा एक आदमी को चिल्लाकर लगातार गालियाँ दिये जा रहा था। वैसी बुरी गालियाँ इसके पूर्व मैंने कभी नहीं सुनी थी। वह आदमी थाने के सामने से होकर जा रहा था – बस, उसका मात्र इतना ही अपराध था। मैं इसे सहन नहीं कर सका और थाने के सामने जाकर उस छोकरे को धमकाते हुए दो-चार बातें सुना दी। सहसा, एक पगड़ी तथा गैरिक-वस्त्रधारी संन्यासी के मुख से फटकार सुनकर वह हक्का-बक्का रह गया। उस दूसरे व्यक्ति ने रोते हुए मेरे पाँव पकड़ लिये और बोला, ''बाबा, यदि तुम न आते, तो यह शायद मुझे पीटना भी शुरू कर देता।''

उसी से पता चला कि उन (गंगाशंकर) विद्यासागर महाशय का मकान निकट ही है और अंग्रेज सर्किल-आफीसर तम्बू में नहीं हैं। इसके बाद थाने से निकलकर थोड़ी दूर जाते

ही दो-तीन कांस्टेबल वहाँ आ पहुँचे और मुझे बुलाकर दरोगा के पास ले गये। थाने के भीतर प्रविष्ट होकर मैंने देखा कि थानेदार एक युवक हैं, पता चला कि उनका घर जोड़ासाँको में है और वे जाति के वैद्य हैं। मेरा परिचय पूछने पर मैंने उन्हें सब कुछ स्पष्ट रूप से बता दिया। वे इससे सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्हें सन्देह हुआ कि मैं गुप्तचर विभाग का कोई कर्मचारी हूँ, अत: उन्होंने पूछा कि मेरे साथ और कितने लोग हैं। मैं उनके किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दूँगा, ऐसा कहने पर उन्होंने मुझे गिरफ्तार कर लेने की धमकी दी। इसके बाद उन्होंने मुझसे पूछा, ''क्या आपने छोकरे को डाँटा है?'' मैं बोला, ''क्या मैंने उसे डाँटकर कोई अपराध किया है? राह-चलते एक व्यक्ति को आपका नौकर गन्दी भाषा में गालियाँ दे रहा था, उसे सुनकर आप भला चुप कैसे रह गये?'' इसके बाद मैं उन्हें यह बताकर चला आया कि मैं इसी गाँव में पण्डित गंगाशंकर विद्यासागर के घर में रात्रिवास करूँगा।

विद्यासागर महाशय के घर में जाकर, मेरी उनके साथ भेंट हुई और मैंने उन्हें दरोगा के विषय में सारी बातें कह दीं। अपराह्न के समय दरोगा और वहाँ के पोस्टमास्टर आ पहुँचे। पण्डित महाशय मेरे विषय में जो कुछ भी जानते थे, वह सब उन्होंने स्पष्ट रूप से उन लोगों को बता दिया और यह भी कहा, ''इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये एक सच्चे संन्यासी हैं। तथापि इनकी विशेषता यह है कि ये स्वदेश के दुख-कष्टों से मर्माहत हैं। उन्हें दूर करने हेतु जी-जान से प्रयास करना ही इनके जीवन का प्रमुख उद्देश्य है। ऐसे स्वदेश-हितैषी संन्यासी पहले कभी मेरे देखने में नहीं आये।'' ये सारी बातें सुनकर वे लोग अपने-अपने स्थान पर लौट गये। उस गाँव में दो रात बिताने के बाद मैं पुन: मुर्शिदाबाद के मार्ग पर आगे बढ़ा।

पलाशी

इसके बाद मार्ग में पलाशी पड़ा। समग्र बंगाली जाति के हृदय-पटल पर, पलाशी की कथा चिरकाल के लिये अंकित है। पलाशी के मार्ग में नवीनचन्द्र सेन की इस कविता का मुझे बारम्बार स्मरण हो रहा था –

ज्योंही बजी अंग्रेजों की रणभेरी
कम्पित करती रणस्थल को
कम्पित करती गंगाजल को
कम्पित करती आम्रकुंज को, वह रणभेरी –

पलाशी का रणक्षेत्र कहाँ है, यह पूछने पर एक किसान मुझे साथ लेकर एक विशाल आम के बगीचे में ले गया और उसे दिखाते हुए मुझसे बोला, ''यही वह युद्धक्षेत्र है।'' सुनते ही मेरे हृदय में तीव्र भावनाएँ उमड़ पड़ीं। थोड़ी देर के लिए मैं स्तब्ध और जड़वत् हो गया।

पलासी में एक घरबारी उदासी (नानकपन्थी) साधु के अखाड़े में मैं दो रात रहा। वहाँ एक 'मनुस्मृति' पाकर, रात में जागकर उसी को पढ़ा करता था।

पलासी से मुर्शिदाबाद के मार्ग पर एक गाँव में एक रात बिताने के बाद ठीक सन्ध्या के समय मैं दादपुर (दाउदपुर) ग्राम में जा पहुँचा।

दाउदपुर में राहत-कार्य का आरम्भ

रास्ते के दोनों ओर अनेक प्रकार की दुकाने हैं। एक दुकान के बरामदे में मैंने रात बिताई। मेरे पास मात्र चार आने ही बचे हुए थे। पहले इस दाउदपुर में ही नवाब लोगों का पीलखाना (हस्तिशाला) हुआ करता था।

मैं बड़े सबेरे गंगा में हाथ-मुँह धोकर बाजार की ओर निकला। जाते हुए रास्ते में देखा कि अत्यन्त फटे और मैले-कुचैले कपड़े पहने करीब चौदह वर्ष की एक मुसलमान लड़की आँसुओं की धारा बहाती हुई जोर-जोर से रो रही है। उसकी काँख में मिट्टी का एक घड़ा था, जिसका पेंदा टूट चुका था। मुझे देखकर वह बोली, ''बाबा, एक तो अकाल पड़ा हुआ है, हमें खाने को नहीं मिलता। फिर घर में मिट्टी की एक ही कलशी और दो हण्डियाँ हैं। घर में पानी रखने के लिये कोई दूसरा बरतन नहीं है। माँ मुझे मारेगी, मैं इसी भय से रो रही हूँ।'' मैंने उसे साथ ले जाकर दो पैसे का एक मिट्टी का घड़ा खरीद दिया और दो पैसे के गुड़-चिउड़े भी खरीदकर दे दिये। उस दुकानदार से अपने तीन आने पैसे वापस लेते ही, निकट के मरादीघी गाँव से दस-बारह छोटे-बड़े लड़के-लड़कियाँ दुकान पर आ गये और बड़ी दीनता से भिक्षा माँगते हुए कहने लगे कि अकाल के कारण उन्हें कुछ खाने को नहीं मिलता। मैंने तुरन्त ही दुकानदार से, उनमें तीन आने का मीठा चिउड़ा बाँट देने को कहा। इसके बाद मेरे यह बताने पर कि अब मैं एक अकिंचन संन्यासी मात्र हूँ और मेरे पास उन लोगों के दु:ख दूर करने का कोई उपाय नहीं है, वे लोग चले गये।

बाद में दुकानदार ने मुझे बताया, ठसदर से एक बाबू

(सकल ऑफिसर) यहाँ चावल बाँटने के लिये आये हुए हैं। आप यदि एक बार उनसे मिल लें, तो अच्छा रहेगा। यह सुनते ही मैं आग्रहपूर्वक उनसे मिलने गया। उनसे पता चला कि सहकारी मजिस्ट्रेट (Assistant Magistrate) द्वारा सदर दफ्तर में जाकर रीपोर्ट जमा करने के बाद ही अकाल-पीड़ितों को चावल (gratuitous relief) दिया जाएगा। सहकारी मजिस्ट्रेट पैंटन साहब उस समय पूर्त-विभाग के निरीक्षकों (P.W.D. Inspectors) के बँगले में ठहरे हुए थे।

मेरी साहब से मिलने की इच्छा हुई। दोपहर के बाद मैंने उस बँगले के पास जाकर देखा कि करीब ३०० अकाल-पीड़ित नर-नारी अपने-अपने बाल-बच्चों के साथ उस भयंकर धूप में बँगले के समक्ष रास्ते पर बैठे हुए हैं। वे सभी साहब को अपने दुख-कष्टों के बारे में बताना चाहते थे।

तभी देखा कि उन अकाल-पीड़ितों में से ही दो-एक बच्चे बँगले के सीमा में वृक्षों पर लगे कच्चे आम तोड़ने के लिये दो-एक ढेले फेंक रहे हैं। उससे आम तो एक भी नहीं गिरे, पर बँगले का उत्तर-भारतीय चौकीदार हाथ में बाँस की एक बड़ी लाठी लिये गालियाँ देते हुए दोनों बच्चों को मारने आया। देखते ही मैंने उन दोनों बच्चों को आम तोड़ने का आदेश दिया और चौकीदार को डाँटने लगा। वह तत्काल वहाँ से खिसक पड़ा।

इसके बाद मैं साहब से मिलने के लिए बँगले के बरामदे में गया। साहब के अर्दली ने हाथ जोड़कर मुझसे कहा कि साहब के नींद से उठने के बाद ही मैं उनसे भेंट करूँ। परन्तु इतनी देर प्रतीक्षा करके साहब के साथ मुलाकात करने की मेरी इच्छा नहीं हुई। अत: मैं सर्किल-आफीसर के पास लौट आया और उन्हें उपदेश देते हुए कहा कि वे दया-धर्म के साथ अपने कर्तव्य का पालन करें।

इसके बाद मैंने सोचा कि जब मैं दुर्भिक्ष-पीड़ितों की कोई सहायता ही नहीं कर सका, तो फिर मेरा यहाँ न ठहरना ही उचित होगा। एक रात वहाँ बिताने के बाद सुबह जब मैं दाउदपुर से निकलकर कुछ ही कदम आगे बढ़ा था कि तभी एक मध्य-आयु की महिला ने आकर मुझसे कहा, ''बाबा, करीब अस्सी-नब्बे साल की वृद्धा गया-वैष्णवी के लिए यदि तुम कुछ उपाय न कर जाओ, तो वह एक-दो दिनों में ही मर जाएगी।''

मेरे लिये यह एक नई समस्या खड़ी हो गयी। मैं उस महिला को अपनी मजबूरी की बात सूचित करके भी, किसी भी प्रकार उसे टाल नहीं सका। अन्त में मुझे फिर लौटना पड़ा। देखा कि एक अत्यन्त छोटी-सी कुटिया में गया-वैष्णवी मल-मूत्र में सनी पड़ी है। दुर्गन्ध के कारण मैं तत्काल भीतर नहीं गया। उस महिला से पूछने पर पता चला कि यह वैष्णवी दाउदपुर के निवासी कायस्थ-वंशीय जीवनकृष्ण दास के जमीन पर निवास करती है।

मैं जीवनकृष्ण बाबू से मिला और उस वृद्धा के कष्ट के बारे में बताया। वे बोले कि बुढ़िया प्रतिदिन उनके घर आकर खाना ले जाया करती थी। परन्तु कई दिनों से वह भिक्षा लेने नहीं आयी है। मैंने उन्हें समझा दिया कि वृद्धा उदर-रोग के कारण ही पिछले कुछ दिनों से भिक्षा लेने नहीं आ सकी है। उन्होंने मेरी इस बात को भी स्वीकार कर लिया कि सर्किल-आफीसर द्वारा चावल-वितरण आरम्भ होने के पूर्व तक जीवन बाबू वृद्धा की कुटिया में ही उसका भोजन भिजवा दिया करेंगे। इस प्रकार वृद्धा के भोजन की व्यवस्था तो हो गयी। अब उसके लिये एक वस्त्र की जरूरत थी। सर्किल-आफीसर के क्लर्क की कृपा से वृद्धा के वस्त्र का अभाव भी दूर हुआ। इस पर मुझे खूब आनन्द हुआ।

वृद्धा की कुटिया में आकर मैंने उस महिला को एक घड़ा पानी तथा गोबर ले आने को कहा और वृद्धा के कमरे की सफाई करने को उद्यत हुआ। इस पर वह महिला बोली, ''बाबा, यह काम तो मैं ही कर लूँगी, आपको नहीं करना होगा।'' उस महिला ने वृद्धा के शरीर को गीले कपड़े से पोंछा और फिर उसे वह नया वस्त्र पहना दिया।

इसी बीच जीवन बाबू के घर से वृद्धा के लिये झोल-भात भी आ पहुँचा। मैं ज्योंही वृद्धा को झोल-भात खिलाने लगा, त्योंही उसके दोनों नेत्रों से अजस्र आनन्दाश्रु झरने लगे। वह मुझे 'जन्म-जन्मान्तर का पुत्र' तथा और भी बहुत-कुछ कहने लगी। मैं बोला, ''जन्म-जन्मान्तर का क्यों, मैं तो तुम्हारे इसी जन्म का पुत्र हूँ !''

बस, अब मेरे लिये ऐसे दुर्भिक्ष-पीड़ित अंचल में न रहना ही उचित होगा, ऐसा सोचकर मैं दाउदपुर से बहरमपुर की ओर रवाना हुआ। **(क्रमशः)**

जब तक अहंकार रहता है तब तक न ज्ञान होता है, न मुक्ति मिलती है; इस संसार में बार-बार आना-जाना पड़ता है।

– श्रीरामकृष्ण देव

प्रश्नोपनिषद् (९)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुनः स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्। अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति।।११।।

अन्वयार्थ – (कुछ कालवेत्ता उन्हें) **पञ्चपादम्** पाँच चरणोंवाले (हेमन्त तथा शीत को एक मानकर पाँच ऋतुएँ ही सूर्य के पाँच चरण हैं) **पितरम्** जगत्-प्रसविता, **द्वादश-आकृतिम्** बारह अंगोंवाले (बारह महीने ही उसके अवयव हैं), **दिवः** द्यू अथवा आकाश-रूप अन्तरिक्ष-लोक के परे **अर्धे** ऊपर के स्थान में **पुरीषिणम्** उदकवर्षी **आहुः** कहा करते हैं; (और) **अथ** फिर **इमे अन्ये उ** ये अन्य सभी कालवेत्ता (उन्हें) **विचक्षणम्** निपुण, सर्वज्ञ (कहा करते हैं); (और) **परे** अन्य लोग (उन्हें) **सप्तचक्रे** (सात घोड़ों रूपी) चक्र में गतिमान **षडरे** षड्ऋतु-रूपी कालात्मा (समग्र जगत्) में **अर्पितम्** समर्पित **आहुः** इति कहा करते हैं।

भावार्थ – (कुछ कालवेत्ता उन्हें) पाँच चरणोंवाले (हेमन्त तथा शीत को एक मानकर पाँच ऋतुएँ ही सूर्य के पाँच चरण हैं), जगत्-प्रसविता, बारह अंगोंवाले (बारह महीने ही उसके अवयव हैं), द्यू अथवा आकाश-रूप अन्तरिक्ष-लोक के ऊपर के स्थान में उदकवर्षी कहा करते हैं; (और) फिर अन्य सभी कालवेत्ता (उन्हें) निपुण, सर्वज्ञ (कहा करते हैं), (और) अन्य लोग (उन्हें) (सात घोड़ों रूपी) चक्र में गतिमान षड्ऋतु-रूपी कालात्मा (समग्र जगत्) में समर्पित कहा करते हैं।

भाष्य – पञ्चपादं पञ्च ऋतवः पादा इव अस्य संवत्सर-आत्मनः आदित्यस्य तैः असौ पादैः इव ऋतुभिः आवर्तते। हेमन्त-शिशिरौ एकीकृत्य इयं कल्पना। पितरं सर्वस्य जनयितृत्वात् पितृत्वं तस्य। तं द्वादश-आकृतिं द्वादश-मासा आकृतयः अवयवाः आकरणं वा अवयविकरणम् अस्य द्वादश-मासैः तं द्वादश-आकृतिम्। दिवः द्युलोकात् परे ऊर्ध्वे अर्धे स्थाने तृतीयस्यां दिवि इत्यर्थः पुरीषिणं पुरीषवन्तम् उदकवन्तम् आहुः कालविदः।

भाष्यार्थ – (काल की गणना करनेवाले कहते हैं कि) पाँच ऋतुएँ इस संवत्सर-रूपी सूर्य के पाँच पाँवों के समान हैं, क्योंकि ये पाँवों के समान ही (बारम्बार) घूमकर लौट आते हैं। हेमन्त और शिशिर (ऋतुओं) को एक बनाकर यह कल्पना हुई है। सबको जन्म देनेवाला होने के कारण उस प्रजापति को पितृत्व प्राप्त हुआ है। बारह महीने उसकी आकृतियाँ या अंग हैं, बारह अवयवोंवाला होने के कारण उसे द्वादशाकृति कहा गया है। वह द्यूलोक से परे अर्थात् ऊपर अन्तरिक्ष के तीसरे स्थान में स्थित है और जल से पूर्ण होने के कारण – काल के ज्ञाता उसे पुरीषिणम् कहते हैं।

भाष्य – अथ तम् एव अन्ये इमे उ परे कालविदः विचक्षणं निपुणं सर्वज्ञं सप्तचक्रे सप्त-हय-रूपेण चक्रे सततं गतिमति काल-आत्मनि षडरे षड्-ऋतुम् इति आहुः सर्वम् इदं जगत् कथयन्ति; अर्पितम् अरा इव रथनाभौ निविष्टम् इति।

भाष्यार्थ – कुछ अन्य कालवेत्ता – उसी (आदित्य) को निपुण (ज्ञानी) या सर्वज्ञ बताते हैं। (वे लोग) कहते हैं कि रथचक्र की नाभि में अरों के समान ही सारा जगत् उसी में अर्पित है और कालरूपी वह सात घोड़ों-रूपी चक्रों तथा छह ऋतुओं-रूपी अरों वाला (आदित्य) निरन्तर गतिमान रहता है।

भाष्य – यदि पञ्चपादो द्वादश-आकृतिः यदि वा सप्तचक्रः षडरः सर्वथा अपि संवत्सरः कालात्मा प्रजापतिः चन्द्र-आदित्य-लक्षणः अपि जगतः कारणम्।।

भाष्यार्थ – चाहे उसे पाँच पावों तथा बारह आकृतियों वाला मानो; अथवा सात चक्रों तथा छह अरोंवाला, दोनों प्रकार से यही निष्कर्ष निकलता है कि सूर्य तथा चन्द्र से युक्त कालरूप संवत्सर या प्रजापति ही जगत् का कारण है।।११।। **(क्रमशः)**

गीतातत्त्व-चिन्तन (१४)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

सत्त्व, रज और तम-प्रधान भक्तों की गतियाँ

तीन गुण-प्रधान भक्त होते हैं, जिनके लिए गतियाँ भी उसी प्रकार निर्धारित होती हैं। सत्त्वगुण-प्रधान देवलोक में जाते हैं। रजोगुण-प्रधान पितृलोक में जाते हैं और तमोगुण-प्रधान सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। प्रेत, भूत-पिशाच इनके वश में होते हैं। उनके द्वारा वे कुछ करतब और चमत्कार दिखाते हैं। ये बहुत निकृष्ट प्रकार के भक्त हैं और मरने के पश्चात् ये इन्हीं में रमे रहते हैं।

परन्तु अर्जुन, जो मेरी भक्ति करता है, मुझे चाहता है, वह यथार्थ आनन्द की उपलब्धि करता है। यह भगवान का तात्पर्य है। वे कहते हैं कि विशेषकर जो कर्मकाण्डी, मीमांसक होते हैं, जो यज्ञ-यागादि करते हैं, ये रजोगुण-प्रधान होते हैं। पितृलोक प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञ करते हैं। उस यज्ञ के द्वारा उस स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं। भगवान कहते हैं कि ये लोग पितरों को खुश करने के लिए कितनी कोशिश करते हैं ! तरह-तरह से यजन करते

हैं। भूतों को वश में करने के लिए कितनी प्रकार की साधनाएँ करते हैं। मुझे वश में करने के लिए क्या इस प्रकार की साधना लगती है? नहीं। वे जितना परिश्रम उधर करते हैं, यदि उतना ही वे मुझे पाने के लिए करें, तो मैं उन्हें प्राप्त हो जाऊँ। पर मुश्किल यह है कि लोगों की मति उस ओर जाती ही नहीं। मुझे प्राप्त करने के लिए उतने परिश्रम की भी आवश्यकता नहीं है। मैं तो पत्र, पुष्प आदि के द्वारा भावना से युक्त होकर भजन करने से ही प्राप्त होता हूँ। यह भगवान का कथन है। यज्ञ-यागादि क्रियाएँ बड़ी कठिन हैं। वेदों में वर्णन आता है कि उनमें जो कर्मकाण्ड के भाग हैं, यदि क्रिया में तनिक-सी भूल हुई, तो उसका अच्छा फल मिलना तो दूर, बुरा ही फल मिलने लगता है। यज्ञ की क्रिया में एक छोटी-सी त्रुटि होने से मनुष्य को फिर उसके अशुभ फल का भागी होना पड़ता है। पर अर्जुन, मेरी उपासना में इस तरह की किसी हानि का भय ही नहीं होता।

समर्पण से ईश्वर-प्राप्ति

ईश्वर भक्ति-भाव के ग्राहक हैं

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।२६।।

यः (जो) मे (मेरे लिये) भक्त्या (भक्तिपूर्वक) पत्रम् पुष्पम् फलम् तोयं (पत्र, पुष्प, फल, जल आदि) प्रयच्छति (देता है) प्रयतात्मनः (उसका) भक्त्युपहृतम् (भक्तिपूर्वक दिया) तत् अहम् (वह सब मैं) अश्नामि (खाता हूँ)।

– ''जो मेरे लिये भक्तिपूर्वक पत्र, पुष्प, फल, जल आदि देता है, उसका भक्तिपूर्वक दिया वह सब मैं ग्रहण करता हूँ।''

यह भगवान का कहना है। पत्र, पुष्प, फल और तोय अर्थात् जल, ये तो सभी जगह सुलभ होते हैं। भगवान की उपासना के लिए हमें न तो कर्मकाण्ड के अनुसार विधि-विधान का वर्तन करना पड़ता है। जो कुछ सामने आया, उसी को उपलक्षण स्वरूप मानकर प्रभु से कहना पड़ता है कि प्रभु मैं आपको समर्पित कर रहा हूँ। बस, इसी के द्वारा तुम सन्तुष्ट हो जाओ। यहाँ पर कहा है - भक्त्या अर्थात् जो

मुझे भक्तिपूर्वक प्रदान करता है। भक्ति के द्वारा दी हुई वस्तु जो मेरे पास आती है, तदहं – उसे मैं, अश्नामि – ग्रहण करता हूँ। जो साधना कर रहा है, जो अभ्यासी जीव है, जो मुझे प्राप्त करना चाहता है, वह भक्ति-भाव से जो कुछ भी मुझे देता है, उसे मैं ग्रहण कर लेता हूँ। कुछ लोग कहेंगे कि भाई, तब तो भगवान की उपासना बड़ी सस्ती है। भगवान तो स्वयं ही कहते हैं कि जल दे दो, तो हो जाएगा। फिर बताशा खरीदने की भी क्या जरुरत है? फल भी नहीं लगते। तब तो भगवान के पास इतना ले जाने से ही हो गया। भगवान कहते हैं कि हो तो सकता है, परन्तु यह जो दूसरी वस्तु जरुरी है – भक्त्या। भक्ति के द्वारा जो भी दिया जाए, वह मैं सानन्द ग्रहण करता हूँ। इस श्लोक में दो बार भक्त्या कह रहे हैं। यहाँ पर एक शब्द और आया है – अश्नामि। अश्नामि का अर्थ होता है – खाना। यहाँ कहा गया है – पत्रं पुष्पं फलं तोयं। जल तो खाने में आता नहीं, वह तो पीने में आता है, पर पत्र और पुष्प भी है। भगवान पत्ता खा जाएँ या फूल खा जाएँ, यह कैसी बात कही भगवान ने ! यह सब क्या कोई खाने की चीज है? जब आदमी इन चीजों को नहीं खाता, तो भगवान कैसे खा जाएँगे? वे कहते हैं कि यदि भक्ति से मुझे कोई यह भी दे दे तो मैं खा लेता हूँ। सुदामा का चावल तो खा ही लिया। वह बात तो प्रसिद्ध है ही। महाभारत में प्रसंग आता है। दुर्योधन ने बड़ा निमन्त्रण दिया। छप्पन प्रकार के सुभोग तैयार किये। भगवान कहते हैं कि दो ही प्रकार से तो खाया जाता है - या तो मनुष्य विपत्ति में हो, तब किसी के यहाँ कभी खाना खा ले या फिर प्रेमपूर्वक कोई बुलाए, तब फिर उसके यहाँ जाकर खाना खा ले। भगवान कहते हैं राजन्, **न च विप्रियसे न चैव वापद्यता वयम्**। न तुझसे हमारा प्रेम है, न तू हम पर प्रेम करता है और न मैं आपत्ति में हूँ। दोनों ही स्थिति यहाँ उपस्थित नहीं हुई है। तब मैं कैसे तेरे घर पर भोजन करूँ? एक कहावत आती है न हिन्दी भाषा में – तोहीं प्रीति न मोहीं आपदा। एक तो तेरे हृदय में मेरे लिए प्रीति नहीं है, और न मेरे ऊपर कोई विपत्ति ही आ पड़ी है कि तेरा निमन्त्रण स्वीकार करूँ। प्रभु तो प्रेम के भूखे होते हैं। दुर्योधन का निमन्त्रण तो ठुकरा देते हैं और विदुर के यहाँ चले जाते हैं। विदुरानी तो इतनी आनन्द में मग्न हो जाती हैं कि वह छिलके तो भगवान को देती हैं और केले का गुदा नीचे डालती रहती हैं। अतिशयोक्ति होगी, जो भी हो। पर भाव यह है कि भगवान वह छिलका ही खाते हैं। जब विदुर आकर कहते हैं कि अरी पगली! यह क्या कर रही है? भगवान को यह क्या खिला रही है? तब स्वयं भगवान ही उसका उत्तर देते हैं। यह जो मैंने छिलका खाया, ऐसा स्वाद जीवन में और पाया ही नहीं। यह भाव का स्वाद है। जैसे कहा जाता है – **भावग्राही जनार्दनः**।

तो ईश्वर भाव को ग्रहण करते हैं। उन्हें व्यंजनों में स्वाद नहीं लगता। उन्हें तो प्रेम में, भाव में स्वाद मिलता है। भगवान यही कहते हैं कि जो कोई भाव के साथ मुझे कुछ देता है, उसे मैं ग्रहण करता हूँ। इसीलिए हम भगवान को कुछ दें, तो भावपूर्वक दें – भगवान, आज तो विशेष कुछ नहीं है, इसे ही तुम खा लो। तो वे उसी को प्रेमपूर्वक ग्रहण कर लेते हैं। यह तो हम माता सारदामणि के जीवन में भी देखते हैं। जब वे जयरामबाटी में थीं, तो कभी-कभी किसी दिन कुछ जुटता ही नहीं था। शाक-सब्जी लातीं, भात पका लेतीं और नमक के साथ प्रेमपूर्वक निवेदित कर दिया करती थीं। ठाकुर वही ग्रहण कर लेते थे। वे तो भाव के भूखे हैं, वस्तु के नहीं। यहाँ भगवान ईश्वर के माध्यम से यही बता रहे हैं कि हम ईश्वर के प्रति जितने समर्पित होते जाते हैं, ईश्वर हमारे समीप उतने ही आते जाते हैं। आगे वे अर्जुन से कहते हैं -

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।२७।।

कौन्तेय (हे अर्जुन!) यत् (जो) करोषि (कर्म करता है) यत् (जो) अश्नासि (खाता है) यत् (जो) जुहोषि (हवन करता है) यत् (जो) तपस्यसि (तप करता है) तत् (वह सब) मदर्पणम् (मुझे अर्पण) कुरुष्व (कर)।

– ''हे अर्जुन ! (तू) जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है, वह सब मुझे अर्पित कर।''

भगवान कह रहे हैं, तू जो कुछ भी करता है, सब मुझे अर्पित कर दो। फिर समझा रहे हैं – तू जो खाता है, यज्जुहोषि – तू जो हवन करता है। यज्ञ-यागादि की क्रिया करता है, ददासि यत् – तू जो दान करता है, यत्तपस्यसि – तू जो तपस्या करता है, तत्कुरुष्व मदर्पणम् – वह सब तू मुझको अर्पित करते हुए कर। मुझे ही अर्पित कर दे। फिर इसका फल क्या होगा? अगले श्लोक में कहते हैं –

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।।२८।।

एवम् (इस प्रकार) संन्यासयोगयुक्तात्मा (संन्यासयोग से युक्त चित्तवाला हो) शुभाशुभफलैः (शुभ-अशुभ फलवाले) कर्मबन्धनैः (कर्मबन्धनों से) मोक्ष्यसे (मुक्त हो जाएगा) विमुक्तः (मुक्त हो) माम् (मुझको ही) उपैष्यसि (प्राप्त होगा)।

– ''इस प्रकार संन्यासयोग से युक्त चित्तवाला हो शुभ-अशुभ फलवाले कर्मबन्धनों से मुक्त हो तू मुझको ही प्राप्त होगा।''

कर्मों के जो शुभ और अशुभ फल होते हैं, संन्यासयोग के द्वारा उन फलों के बन्धनों से तू मुक्त हो जाएगा और मुक्त होकर तू मुझे प्राप्त कर लेगा। संन्यासयोग का यहाँ यह अर्थ नहीं है कि हम संसार से संन्यास ले लें। तब क्या तात्पर्य है? इसका तात्पर्य यह हुआ कि संसार में रहते हुए संन्यास का भाव जीवन में कैसे आए, जिस भाव के द्वारा कर्मों का बन्धन तुझ पर नहीं लगेगा और तू मुझे प्राप्त करने में समर्थ होगा। यही बात भगवान यहाँ पर सूत्र रूप में बता रहे हैं।

इसके पहले उन्होंने कहा था – अर्जुन बहुत से उपासक होते हैं, जो भिन्न-भिन्न देवताओं की उपासना करते हैं, एकमात्र मैं ही उन समस्त देवताओं के रूप में विराजित हूँ, पर चूँकि वे अलग-अलग देवताओं की पूजा करते हैं, इसलिये वे उन-उन देवताओं को प्राप्त होते हैं। तीन प्रकार के उपासक हैं – एक उच्चतर देवताओं के उपासक, दूसरे पितरों के पूजक और तीसरे भूत-प्रेतों की पूजा करनेवाले। पहले देवताओं के उपासक अधिक सत्त्वगुणी होते हैं, दूसरे पितृपूजक रजोगुण-प्रधान होते हैं, उनमें दिखाने का भाव, आडम्बर होता है। ऐसे लोग चाहते हैं कि लोग उन्हें उपासक कहें, भक्त कहकर पुकारें। ऐसे व्यक्ति मृत्यु के बाद पितृलोक में जाते हैं, निम्नतर स्वर्गलोक में निवास करते हैं। तीसरे भूतों के उपासक तमोगुणी होते हैं। भले ही उन लोगों को कुछ सिद्धाई मिल जाती है, जिससे वे लोग कुछ चमत्कार दिखाते रहते हैं। हमलोग पढ़ते और सुनते हैं कि अमुक बाबा अमुक प्रकार के चमत्कार कर देते हैं। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ७७ का शेष भाग

बन जाता है। संस्कृत दर्शन या धर्मशास्त्र पढ़ते समय लोग इन देवताओं में परिवर्तन देखकर हमेशा परेशान हो उठते हैं। परन्तु यह एक सिद्धान्त है कि ये पदों के नाम हैं और सभी जीवों को बारम्बार इन पदों पर बैठाया जायेगा, और जब वह जीव उस पद पर आसीन होने के बाद देवता के रूप में मानव-जाति की सहायता कर सकता है। इसीलिए उन्हें स्तुति तथा उपहार अर्पित किया जाता है। हमें नहीं मालूम कि आर्यों के बीच यह विचार कैसे प्राप्त हुआ, परन्तु ऋग्वेद के शुरूआती अंशों में हम देखते हैं कि यह धारणा अपने परिपक्व रूप में प्राप्त होती है।

इन समस्त देवताओं, मनुष्यों, पशुओं तथा लोकों की पृष्ठभूमि में तथा उनके परे इस ब्रह्माण्ड का शासक ईश्वर विद्यमान है, जो काफी कुछ बाइबिल के नये नियमों में वर्णित स्रष्टा, संरक्षक तथा शासकरूपी परमात्मा से काफी समानता रखता है। इन देवताओं तथा ईश्वर के बीच जरा भी घालमेल नहीं करना चाहिये, परन्तु अंग्रेजी में दोनों के लिए एक ही शब्द का प्रयोग होता है। तुम लोग 'गॉड' शब्द का एकवचन और बहुवचन में प्रयोग करते हो, परन्तु दीप्तिमानों को देवता और ईश्वर को 'गॉड' कहते हैं। यही बात हमें वेदों के प्राचीनतम अंशों में भी प्राप्त होती है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ७९ का शेष भाग

विष्णु चेतना जाग उठेगी। महर्षि पतंजलि ने उपनिषदों की खोज को सर्वजनसुलभ बनाने के लिये हमलोगों को जो तत्त्व बताया है, वैसा ज्ञान आज तक मानवजाति में कहीं भी प्रचारित नहीं हो पाया है, किन्तु हमलोग केवल जानकर ही सन्तुष्ट हैं। तुम लोग इसे कार्य में परिणत करके धन्य हो जाओ। लकड़ी में आग है, लकड़ी में आग है, यह ज्ञान लेकर ही तो सारा समय बिता रहा हूँ। तुम वैष्णव-साधना करके धन्य हो जाओ।

मेरा स्नेह और शुभेच्छा जानना। इति

शुभाकांक्षी
प्रेमेशानन्द

(क्रमशः)

साधुओं के पावन प्रसंग (२६)

स्वामी गहनानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

स्वामी गहनानन्द (१९१६-२००७)

स्वामी गहनानन्द जी महाराज का प्रथम दर्शन मैंने १९५९-६० ई. में किया था। उस समय वे रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान, कोलकाता के सह-सचिव थे। वहाँ के सचिव थे स्वामी दयानन्द जी महाराज। उन दिनों मैं नया ही अद्वैत आश्रम में सम्मिलित हुआ था। उस समय अद्वैत आश्रम वेलिंग्टन स्क्वायर (वर्तमान में राजा सुबोध मल्लिक स्क्वायर) के पूर्व दिशा में ४, वेलिंग्टन लेन में था। मुझे एक बार फोड़ा के चिकित्सा हेतु सेवा प्रतिष्ठान में जाना हुआ था। अभी जहाँ पर अस्पताल का विशाल भवन है, उस समय वहाँ पर अस्वेस्टस सीट का एक मकान था। मुझसे कहा गया कि अस्त्रोपचार करना होगा। स्वामी गहनानन्द जी ने फोड़ा के अस्त्रोपचार के लिए सभी व्यवस्था कर दी। वे बीच-बीच में अद्वैत आश्रम में आया करते थे। हमलोग उनके संग का लाभ करते थे। मेरी दृष्टि में वे थे – एक असाधारण कर्मयोगी, प्रखर व्यावहारिक ज्ञान के अधिकारी, अत्यन्त स्नेहपरायण, सहानुभूतिसम्पन्न और समस्या के समाधान में दक्ष एक संन्यासी। जो कोई भी उनसे सहायता चाहता, वे उसकी सहायता करते थे।

स्वामी गहनानन्द जी महाराज

न्यासी होने के उपरान्त गहनानन्दजी और स्वामी दयानन्द जी गाड़ी से बेलूड़ मठ में न्यासी-बैठक के लिए जाते थे। उन दिनों अद्वैत आश्रम का स्वयं का कोई भी वाहन नहीं था। वे लोग अद्वैत आश्रम से सदैव स्वामी गम्भीरानन्द जी को ले जाते और वापस आते समय आश्रम में पहुँचा जाते थे; किसी समय यदि वे लोग नहीं आ पाते, तो स्वामी गम्भीरानन्द जी बस से (बेलूड़ मठ) जाते थे।

गहनानन्दजी एक अथक कर्मयोगी थे। उनके नेतृत्व और दायित्व में ही अस्पताल का वर्तमान विशाल भवन निर्मित हुआ था। मुझे स्मरण है कि जवाहरलाल नेहरू और श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डित उस भवन के उद्घाटन समारोह में आये थे। संन्यासियों की चिकित्सा हेतु 'प्रेमानन्द वार्ड' को निर्दिष्ट किया गया। इसके पूर्व संन्यासीगण अन्य रोगियों के साथ साधारण वार्ड में ही रहते थे। परवर्तीकाल में स्नातकोत्तर विभाग के उद्घाटन के समय महाराज ने मुझे 'सेवा' विषय पर कुछ बोलने के लिए कहा था।

जून-जुलाई, १९७० ई. में अतिवृष्टि के कारण पूर्वी कोलकाता का अधिकतर भाग जलमग्न हो गया था। रामकृष्ण मिशन ने सेवाकार्य आरम्भ किया। मुझे उसका दायित्व दिया गया था। मैं बेलूड़ विद्यामन्दिर गया और वहाँ के तालाब से एक नौका लेकर उसे एक व्यावसायिक ट्रक से ले आया। हमलोगों ने खिचड़ी देने के लिए कई बड़े-बड़े ड्रम संग्रह किये। ये सब बेलूड़ मठ के श्रीरामकृष्ण मन्दिर के नीचे गोदाम में रखे हुए थे। उस नौका को बस्ती के बीच में फँसे हुए बाढ़-पीड़ित मनुष्यों की सेवा में लगाया गया। उस समय अधिकतर बाढ़-पीड़ित मनुष्य स्थानीय एक विद्यालय में आश्रय लिये हुए थे। उन लोगों को भोजन-सामग्री की विशेष आवश्यकता थी। मैंने गहनानन्दजी से हमारे राहत-कार्य में योगदान करने के लिए अनुरोध किया। उन्होंने पूछा, ''उस विद्यालय में कितने लोग आश्रय लिये हुये हैं?'' मैंने कहा, ''महाराज, सम्पूर्ण क्षेत्र ही जलमग्न हो गया है। बस्ती के अधिकतर लोग उस विद्यालय में ही आश्रय लिये हुए हैं, अनुमानत: तीन-चार सौ व्यक्ति तो होंगे ही।'' उन्होंने यह सुनकर कहा, ''२ बजे

ट्रक और ड्रम लेकर सेवा प्रतिष्ठान में आ जाना, खिचड़ी तैयार रहेगी।''

वे अल्पभाषी व्यक्ति थे। महाराज ने नर्सिंग ट्रेनिंग स्कूल की ३० छात्राओं को अस्पताल के रसोईघर में खिचड़ी बनाने के लिए लगाया। ३ बजे तक खिचड़ी तैयार हो गयी। बस्ती के विद्यालय में आश्रित क्षुधार्त व्यक्तियों के पास खिचड़ी भेज दी गई। क्षुधार्त व्यक्तियों को भोजन कराना एक अद्‌भुत आनन्द की अनुभूति थी। राहत-कार्य का यह मेरा पहला अनुभव था।

दामोदर वैली कॉरपोरेशन द्वारा जलमग्न क्षेत्रों से जल निकालने के लिए कई शक्तिशाली पम्प की व्यवस्था की गई थी। उनको चलाने के लिए ४४० वोल्ट बिजली से जोड़ा गया था। अकस्मात् वे सब पम्प बन्द हो जा रहे थे और दुर्घटना के कारण एक कर्मचारी विद्युत-प्रवाह लगने से गम्भीर रूप से आहत होकर गिर गया। मैंने देखा अन्य कर्मचारी उस कर्मचारी को कम्बल से लपेटकर रास्ते में लिटाकर पूरे शरीर में मालिश कर रहे हैं, देखने से ऐसा लगा कि उसकी अवस्था बहुत खराब होती जा रही है। सैन्यवाहिनी का एक दल उस समय वहाँ पर गस्त लगा रहा था। उनके अधिकारी के पास जाकर मैंने कर्मचारी की मरणासन्न अवस्था के विषय में बताया और उसे अस्पताल पहुँचाने के लिए अनुरोध किया। मुझे साधु देखकर उन्होंने अविलम्ब एक जीप से सियालदह के पास नीलरतन सरकार अस्पताल में उसे भेज दिया। मुझे बहुत आनन्द हुआ। इसी बीच एक व्यक्ति ने आकर बताया कि उस विद्यालय में आश्रित एक आसन्नप्रसवा स्त्री को प्रसव-वेदना आरम्भ हो गयी है। उसने उसी समय उस स्त्री को किसी अस्पताल में अविलम्ब भर्ती कराने हेतु हमारी सहायता माँगी। मैंने गहनानन्दजी को फोन करके उनके साथ सम्पर्क करने का प्रयास किया, लेकिन वे उस समय मिटींग में व्यस्त थे, जिसके कारण उनसे वार्तालाप नहीं हो पायी। बस्ती के कुछ लोग उस स्त्री को नीलरतन सरकार अस्पताल में ले गये। उस दिन सन्ध्या के समय मैंने इस घटना को गहनानन्दजी को बताया। मैंने उस स्त्री को सेवा प्रतिष्ठान में क्यों नहीं भेजा, इसके लिए उन्होंने मुझे बहुत डाँट-फटकार किया। मैंने कहा, ''महाराज, मैं जानता हूँ कि कई बार अस्पताल में बिस्तर खाली नहीं रहता है, जिसके कारण बिना आपकी अनुमति के मैंने उसको सेवा प्रतिष्ठान में नहीं भेजा।'' हमलोगों ने उस आसन्नप्रसवा स्त्री की किसी प्रकार की कोई सहायता नहीं की, इससे महाराज बहुत दुखित हुए थे।

हम लोग पीड़ितों को दिन में केवल एक बार ही कुछ भोजन दे पा रहे थे; इसलिये मेरे मन में कुछ दुख था। सूर एनामेल कम्पनी के मालिक श्री सूर एक दिन अद्वैत आश्रम में आये तथा हमारे सेवाकार्य में कुछ सहायता करने की अपनी इच्छा प्रकट की। मैंने उनसे कहा, ''हम लोग पीड़ितों को केवल एक बार ही भोजन दे पा रहे हैं। रात्रि में उनलोगों के पास भोजन के लिए प्राय: कुछ भी नहीं रहता है और वहाँ पर कई बच्चें तथा अस्वस्थ लोग भी आश्रय लिए हुए हैं। २०० पावरोटी का पॉकेट होने से उन लोगों के पास पहुँचाया जा सकता है।''

श्री सुर ने तत्क्षण धर्मशाला के बड़ूआ बेकरी के साथ सम्पर्क किया। वहाँ से सन्ध्या ५ बजे एक जीप में ताजा पावरोटी आया और हमलोगों ने उसको पीड़ित लोगों में वितरित कर दिया।

बस्ती के कई स्थानों पर जल का जमाव अधिक नहीं था। एक दिन हमलोग नौका से उन स्थानों पर दोपहर का भोजन देने गये; उस समय वहाँ के कुछ लोग हमें देखकर अपनी सहायता करने के लिए बारम्बार हमसे अनुरोध करने लगे, क्योंकि इसी बीच उन लोगों के घरों में भी जल जाना आरम्भ हो गया था। हमलोग चार-पाँच दिन इस सेवाकार्य को करते रहे। गहनानन्दजी ने पकाया हुआ भोजन भेजने की व्यवस्था की थी और प्रत्येक दिन सन्ध्या के समय हमसे हमारी आवश्यकता के सम्बन्ध में पूछताछ करते। बेलूड़ मठ रीलिफ-विभाग से अन्य सामग्री ली गयी थी। मुझे स्मरण है कि भूतेशानन्दजी ने मुझे सभी चीजों का हिसाब रखने के लिए कहा था। स्थानीय लोगों से हमने रुपया, वस्त्र, चावल, सब्जी संग्रह किया था। उस समय नक्सल आन्दोलन के कारण बहुत कम लोग बाहर निकलते थे। उस दल के कई युवकों के साथ मेरा परिचय था। मैंने उनको कुछ रुपया और चावल देकर पीड़ित लोगों की सेवा करने के लिए कहा था।

अमेरिका चले आने के बाद मैं जितनी बार भारत गया हूँ, उतनी बार गहनानन्दजी मुझे कम-से-कम एक दिन के लिए भी सेवा प्रतिष्ठान में रहने के लिए आमंत्रण देते थे। मैंने देखा है कि वे प्रात: जप-ध्यान के बाद गीता या उपनिषद का पाठ करते थे। तदुपरान्त जलपान करके अस्पताल में

शेष भाग पृष्ठ ९४ पर

सत्संग से चित्तशान्ति और भगवत्प्राप्ति

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

भगवान को प्राप्त करनेवाले को सत्संग करना चाहिए। सत्संग करने से भगवान तो मिलते ही हैं, साथ ही चित्त में शान्ति भी मिलती है। लेकिन यह सत्संग है क्या? सत्संग का क्या अर्थ है? सत्संग का अर्थ है सत् का संग और कुसंग का त्याग। कामना-वासना हजारों जन्म से हमारे पीछे पड़ी है, जिसकी हमें अवश्यकता नहीं है, उसके चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। ऐसा करने से तुम्हारा मन शान्त रहेगा। मन भगवान के जप और भजन में लगेगा। प्रलोभन में हमें जाना ही नहीं है। जब मन कामनाओं से चंचल नहीं होगा, तो शान्त रहेगा। आध्यात्मिक जीवन में त्याग का यही महत्त्व है। यदि हमारे मन में ईश्वर को छोड़कर सांसारिक अहंकार होगा, तो भगवान हमें नरक में डाल देंगे। लोभ की वृत्ति आध्यात्मिक जीवन की बड़ी बाधा है। इसलिये हमारे मन में कहाँ लोभ है, हमारा मन कहाँ जा रहा है, इसे देखते रहना चाहिए। काम-क्रोध-लोभ से बचने के लिये भगवान की प्रार्थना ही सबसे अच्छी है।

किसी भी काम का यह मापदण्ड है कि हमें विचार करना है कि क्या मेरे इस कार्य से भगवान के भजन में सहायता मिल सकती है? संसार में हम जहाँ चिपके कि भगवान से हटे। हमें अपने मन को भगवान से जोड़ना है। त्याग का अर्थ है आसक्ति का त्याग। वस्तु, घर, व्यक्ति, किसी में भी आसक्ति नहीं रखना है। आकाश जैसे निर्लिप्त रहता है, वैसे अपने मन को निर्लिप्त रखना चाहिए।

मन को संसार को छोड़कर भगवान में लगाने का प्रयत्न करना चाहिए। भगवान में लगाने से संसार अपने आप छूटता जायेगा। इसे दूसरा कोई नहीं बता सकता, हमारा मन ही बता सकता है कि उसकी कहाँ आसक्ति है। उसको अधिक कीमती क्या लगता, वह वहाँ क्यों चिपका है? जब उसे भगवान कीमती लगेंगे, तो वह अवश्य उनके पास जाएगा। भगवान के भक्तों से भगवान के गुण-लीलाओं की चर्चा करना सत्संग है।

भगवान का नाम-जप नि:स्वार्थ भाव से सजग होकर करना चाहिए। भगवान से हृदय खोल के बातचीत करनी चाहिए। हमें एकान्त में बैठकर देखना चाहिए कि मुझको किन-किन चीजों से, बातों से कष्ट हो रहा है। सब कष्टों को हटाकर मन को भगवान से जोड़ना चाहिए। संसार में सुविधा खोजना निरी मूर्खता है। संसार में सुविधा पाने की लालसा पानी मथकर मक्खन निकालने जैसा है। पानी में मक्खन नहीं मिलनेवाला है। मक्खन तो दूध में मथने से ही मिलेगा। इसी प्रकार संसार में आसक्ति से शान्ति नहीं मिलेगी, भगवान नहीं मिलेगें। मन में शान्ति तो भगवान से मिलेगी। अत: जैसे भी हो, हमारा मन भगवान में लगे, यही प्रयास करना चाहिए। यदि हमारा मन विरुद्ध दिशा में जा रहा है, तो सही दिशा में लाएँ। अपने जीवन में अच्छा-बुरा जो भी आये, उसे भगवान को समर्पित करें।

चित्तशुद्धि और भगवान की सन्निधि का सहज उपाय है कि मन में यह सोचें कि भगवान सब जगह उपस्थित हैं। अत: आप जहाँ भी हैं, भगवान के सान्निध्य का बोध करें और अपने कर्म भगवत्-समर्पण-भावना से करने का प्रयास करें। हमारा खाना-पीना सब भगवान को अर्पण करें। भगवान को अर्पण करके खाने से भोजन प्रसाद हो जायेगा, उससे हमारी चित्तशुद्धि होगी।

भगवान का नाम-जप निष्ठा से करना सबसे बड़ा धर्म है। धर्म माने हमारा सुस्वभाव। जैसे लोहा आग से पिघल जाता है, वैसे हमारा मन भगवान के नाम-जप से, भगवान की भक्ति से सच्चा धार्मिक हो जाता है। अर्थात् धर्म हमारे आचरण में आ जाता है। भगवान ने मनुष्य की बुद्धि में सोचने, विचार करने की क्षमता दी है, जो पशुओं में नहीं है। पशु और मनुष्य में विचार का अन्तर है। मनुष्य के शरीर में चैतन्य का अत्यधिक प्रकाश है, इससे उसका विकास होता है। हमें यह विचार करना है कि हम मन नहीं, मन हमारा है। इसी मानसिक शक्ति के ऊपर आत्मा की शक्ति है। हम मनुष्य भले-बुरे का ज्ञान सोच सकते हैं, लेकिन पशु नहीं।

ईश्वर ने बुद्धि सबको दी है, लेकिन मनुष्य में ही विवेक करने की बुद्धि दी है। मनुष्य के मन का विस्तार बहुत है। स्वार्थी लोगों की बुद्धि स्वार्थी होती है, उनमें विकृति आ जाती है। वे जीवन में कुछ नहीं कर सकते। आचार्यों ने कहा है कि दूसरों का दुख दूर करो, तब तुम सुखी हो जाओगे। सबके कल्याण के लिये भगवान से प्रार्थना करो।

बुढ़ापे से कोई नहीं बच सकता। जब बुढ़ापा आयेगा, तब अपने आप आपको मृत्यु का स्मरण होगा। बुढ़ापा में संसार के भोग भोगने के लिए हमारे पास शक्ति नहीं रहेगी। मानसिक शक्ति भी कम हो जाती है। जीवन का सभी सुख इंद्रियजन्य है। बुढापे में इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। तुमको इंद्रियों से मिलनेवाला सुख स्थायी नहीं है। जब तुम्हें भोग की इच्छा हो और तुम भोग नहीं कर सकते, तब बहुत दुःख होता है। इसलिए सब त्याग करने की इच्छा रखनी चाहिए। त्याग करोगे, तो शान्ति से रहोगे। नहीं तो, दुख ही दुख है। मन का सुख कब मिलेगा? जब हम मन के स्वामी बनेंगे। जो मन के गुलाम हैं, वही दुःखी हैं। इसलिए मन के ऊपर दृष्टि डालनी है। मन को संसार से निकालकर भगवान में लगाना है। संसार की वस्तुयें उपयोग करने के लिये हमें मिली हैं, संग्रह करने के लिये नहीं। उसका दूसरों के लिये सदुपयोग करना है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, वही जीते हैं, जो दूसरों के लिये जीते हैं, जो दूसरों के लिए सब कुछ करते हैं। जो स्वार्थी हैं, वे जीतेजी मरे हुए के समान है। हमें प्रतिदान की आशा नहीं करनी है। मुझको भगवान ने शक्ति दी है, तो उसको दूसरों की सेवा में लगानी है। तुम्हारी कमाई के हिस्से में सबका हिस्सा रहता है। ऐसा करोगे, तो तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा। इसलिए स्वामीजी ने कहा है कि दूसरों के लिये जीना सीखो, उसी में हमारा कल्याण होगा। सबसे पहले अपने परिवार से सेवा शुरू करनी पड़ेगी तभी पड़ोसी की, गाँव की, देश की सेवा कर सकोगे। ○○○

पृष्ठ ९२ का शेष भाग

जाते थे। वे दोपहर में विलम्ब से भोजन करते। तदनन्तर थोड़ा-सा विश्राम करके रात्रि के दस बजे तक कार्य करते थे। रात्रि में देर तक जागने का उनको अभ्यास था। एक बार कर्मचारियों के अनशन के समय उन्होंने अन्यान्य संन्यासियों की सहायता से इस परिस्थिति का दृढ़ता से सामना किया था।

पाश्चात्य देशों के केन्द्रों के विषय में जानने की गहनानन्दजी की विशेष अभिलाषा थी। हम दोनों के बीच में विविध विषयों पर चर्चा होती थी तथा किस प्रकार संघ का आदर्श और अधिक प्रखर रूप से विकसित हो, इस पर भी चर्चा होती थी। एक बार सेवा प्रतिष्ठान के लिए सहायता हेतु रवीन्द्र सदन में 'भीष्म' नामक नाटक का अभिनय हुआ। महाराज ने मुझे अपने साथ ले जाकर वह चमत्कारी अभिनय दिखाया था।

१९९३ ई. में शिकागो धर्ममहासभा शताब्दी उत्सव में सम्मिलित होने के लिए महाराज अमेरिका आये थे। शिकागो रिट्रिट सेन्टर (निर्जन साधन केन्द्र) 'गांजेस' में उनके नेतृत्व में एक साधु-सम्मेलन हुआ। उसमें पाश्चात्य में हमारे कार्य के सम्बन्ध में विविध विषयों पर चर्चा हुई। वे अन्य केन्द्र भी देखने गये और उन्होंने सेन्ट लुईस केन्द्र में आयोजित सर्वधर्म-सम्मेलन में भाग लिया।

१९९६ ई. में जब वे संघ के महासचिव थे, उस समय मैं भारत आया। बंग्लादेश में अवस्थित केन्द्रों की अवस्था के लिए वे गम्भीर रूप से चिन्तित थे। उन्होंने मुझसे कहा कि भारत से उन सब केन्द्रों की सहायता करना सम्भव नहीं है। उन्होंने मुझे अमेरिका से उन सब केन्द्रों की सहायता करने के लिए कहा। मुझे स्मरण है कि जब वे उपाध्यक्ष थे और काँकुड़गाछी में निवास कर रहे थे, उस समय आश्रम से संलग्न बन्द पड़ी हुई टाटा शॉप फैक्टरी की जमीन खरीदने के लिए उन्होंने जी-जान से प्रयत्न किया था। उनकी सहायता हेतु आवेदन भेजने पर मैंने कुछ रुपया भेजा था। उनकी दूरदृष्टि के कारण ही वह जमीन मठ के अधिकार में आयी।

मैंने उनको कभी भी हिमालय में तपस्या करने के लिए जाते हुए नहीं देखा। सम्पूर्ण जीवन श्रीश्रीठाकुर और स्वामीजी के कार्य के द्वारा ही वे तपस्या कर गये हैं। जब वे महासचिव थे, उस समय देखा था कि वे मन्दिर में सन्ध्यारती के लिए न जाकर कोलकाता वकील के घर जा रहे हैं। कार्य ही उनके लिए पूजा था। रामकृष्ण संघ में उनका अवदान चिरस्मरणीय रहेगा। **(क्रमशः)**

माननीय राज्यपाल महोदय का आश्रम-दर्शन

पश्चिम बंगाल के राज्यपाल श्री जगदीप धनखड़ ने २४ अक्तूबर, २०२० को **बेलूड़ मठ** का परिदर्शन किया।

उत्तराखण्ड की राज्यपाल श्रीमती बेबी रानी मौर्य ने १९ अक्तूबर, २०२० को **अद्वैत आश्रम, मायावती** का परिभ्रमण किया।

रामकृष्ण आश्रम, मैसूर ने २६ सितम्बर, २०२० को एक कार्यक्रम का शुभारम्भ किया, जिसके अन्तर्गत लोगों को २५००० पौधे और रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य का वितरण किया जाएगा।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन के चिकित्सालय की मोलिक्यूलर लैबोरेटरी को १२ अक्तूबर, २०२० को नेशनल एक्रिडीटेशन बोर्ड फॉर टेस्टिंग एण्ड कैलिबरेशन लैबोरेटरी द्वारा मान्यता दी गई।

रामकृष्ण मठ, हलसुरु ने २६ अक्तूबर, २०२० को बैंगलूर सिटी रेलवे स्टेशन, जो क्रान्तिवीर संगोली रयाना रेलवे स्टेशन के नाम से भी प्रचलित है, वहाँ विशेष स्थल पर स्वामी विवेकानन्द की कांस्य प्रतिमा की स्थापना की। पूज्य परमाध्यक्ष महाराज के आशीर्वचनों का वीडियो भी इस विशेष अवसर पर दिखाया गया। प्रतिमा के समीप आयोजित प्रदर्शनी का उद्घाटन, केमिकल एवं फर्टिलाइजर विभाग के केन्द्रिय मंत्री श्री डी.वी. सदानन्द गोड़ा के द्वारा किया गया। इस अवसर पर आश्रम के सचिव स्वामी तत्त्वरूपानन्द महाराज और अन्यान्य संन्यासी और सीमित संख्या में भक्तवृन्द उपस्थित थे।

रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम, चेन्नैई ने अपने आवासीय हाईस्कूल एवं पॉलीटेकनिक के विद्यार्थियों को साफ्टवेयर युक्त ६३० टेबल कम्प्यूटर का वितरण किया, जिससे उन्हें कोविड-१९ महामारी के समय ऑनलाईन शिक्षा प्राप्त करने में सहायता प्राप्त हो सके।

राष्ट्रीय POSHAN **(पोषण) माह - २०२० संक्षिप्त रिपोर्ट**

मार्च, २०१८ में प्रारम्भ किये गये पोषण (Prime ministers Overarching Scheme for Holistic Nutrition) अभियान नेशनल न्यूट्रीशनल मिशन के अन्तर्गत भारत सरकार ने शिशुओं किशोर बालिकाओं एवं महिलाओं में पायी जानेवाली कुपोषण, अवरुद्ध विकास जन्म के समय कम वजन एवं एनेमिया जैसी विभिन्न समस्याओं से परिचय कराने हेतु सितम्बर, २०२० को राष्ट्रीय पोषण माह घोषित किया है।

नीति आयोग, भारत सरकार ने सभी समाजसेवी संस्थाओं से सितम्बर में राष्ट्रीय पोषण माह मनाये जाने का आह्वान किया। इसी परिपेक्ष्य में रामकृष्ण मठ एवं मिशन की ५५ शाखाओं ने २१ राज्य/केन्द्र शासित प्रदेशों में सितम्बर एवं अक्तूबर, २०२० में विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया। स्वास्थ्य जागरूकता शिविर का आयोजन, पौष्टिक आहार (वितरण), मल्टी विटामिन टेबलेट एवं सिरप बोतलें, स्वास्थ्य सम्बन्धित उपकरण, सब्जियों के बीज एवं पौधों के वितरण प्रमुख कार्य रहे।

इस उपलक्ष्य मे आयोजित कार्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण

आन्ध्र प्रदेश : २५ एवं २९ सितम्बर को **रामकृष्ण मिशन, विजयवाड़ा** ने १२६ गरीब एवं कमजोर महिलाओं में १२६ किलो मूँगफली, बादाम, १२६ किलो दाल, १२६ किलो सूजी, ५० किलो **सोया चिन्कस,** १२६ किलो खाद्य तेल, १२६ किलो मुड़ी का वितरण किया।

अरुणाचल प्रदेश – रामकृष्ण मिशन, अलांग ने जागरूकता शिविर का आयोजन किया। **रामकृष्ण मिशन, नरोत्तमनगर** ने कुछ नि:शुल्क जागरुकता शिविर का आयोजन किया एवं ११७ बच्चों, ८ स्तनपान करा रही माताओं एवं ५ गर्भवती महिलाओं के बीच १३० पौष्टिक आहार किट (एक किट में ५०० ग्रा. पौष्टिक पेय, २ पैकेट विस्कुट, २ केक एवं चॉकलेट) का वितरण किया।